ओ३म्

चन्द्र सूक्तों से राष्ट्र उन्नत

श्रृंगी ऋषि के मूल स्वर में ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी द्वारा प्रवचन संग्रह



प्रकाशक

वैदिक प्रचार समिति, अमृतसर

ओ३म्

चन्द्र सूक्तों से राष्ट्र उन्नत

श्रृंगी ऋषि के मूल स्वर में ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी द्वारा प्रवचन संग्रह

प्रथम संस्करण सितम्बर 1993 - 1100 प्रतियां

वैदिक प्रचार समिति, अमृतसर
पता : मै० पुनीत कुमार एण्ड ब्रदर्स, केसरी बाग, निकट फुवारा चौक,
अमृतसर - 143006 (दूरभाष : 33937, 32710)
ब्रांच : सी-3/14 राजस्थली अपार्टमैन्ट्स,
(निकट मधुवन चौक) पीतमपुरा, दिल्ली.३४ (दूरभाष 7276429)

मूल्य रुपये 18/-

चन्द्र सूक्तों से राष्ट्र उन्नत रहेगा

विषय सूची — पृष्ठ सं०

१.	पवमान की व्याख्या	१
२.	अन्नाद का महत्व	१२
३.	चन्द्रवंश और सूर्यवंश की व्याख्या	२५
४.	समाज में माताओं का सहयोग	४१
५.	धर्म का स्वरूप	५५
६.	धर्म और राष्ट्रवाद की विवेचना	७१
७.	धर्म से ज्ञान एवं विज्ञान तथा सन्तति	८५
८.	संसार का स्वरूप	९९

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. मैं० पुनीत कुमार एण्ड ब्रदर्स, केसरी बाग, अमृतसर-6
2. साईट 1/314, विकासपुरी, नई दिल्ली-18 (दूरभाष 5597703)
3. C-3/14 राजस्थलि अपार्टमैन्ट्स, (निकट मधुवन चौक) पीतमपुरा, दिल्ली-34, (दूरभाष : 7276429)
4. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, वरनावा (मेरठ)
5. मैं० गोविन्द राम हासा नन्द, नई सड़क, दिल्ली-6

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज का
लघु जीवन परिचय

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज पुनर्जन्म के साक्षात प्रमाण हैं। इनका जन्म अक्तूबर १९४२ में ग्राम खुर्रमपुर सलीमाबाद, निकट कसवा मुराद नगर, जिला मेरठ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। आर्थिक समस्या के कारण परिवार इनकी शिक्षा का कोई प्रबन्ध न कर सका और बचपन से ही इन्हें शारीरिक श्रम से जीविका उपार्जन में लगा दिया। आत्मा में संचित पूर्व जन्मों के संस्कारिक ज्ञान के कारण ब्रह्मचारी जी बचपन से ही प्रवचन करने लगे। सीधे लेटने के कुछ मिनट बाद ही समाधी में चले जाते, हाथ छाती के ऊपर जुड़ जाते, गर्दन दायें-बायें हिलने लगती और प्रवचन शुरू हो जाता। जहां ग्राम वालों के लिए ब्रह्मचारी जी मनोरंजन का साधन बने वहां परिवार ने इनकी क्रिया को मानसिक विकार समझ कर प्रचलित तरीकों अर्थात् धूनी इत्यादी से उपचार भी करवाया। पन्द्रह वर्ष की आयु में ब्रह्मचारी जी ने इस भाव से कि वह ठीक होकर ही लौटेंगे, घर त्याग दिया और इसी लक्ष्य को लिए घूमते घुमाते आप ग्राम वरनावा (मेरठ) पहुंचे। यहां और आस पास की ग्रामीण जनता ने इनके प्रवचन बड़ी श्रद्धा से सुने और इन्हें सम्मान से संबोधित करने लगे।

अथाह ज्ञान के भण्डार, आध्यात्मिक जगत की महान विभूति जन्म-जन्मातंरों के श्रृंगी ऋषि की आत्मा ब्रह्मचारी कृष्ण दत्त जी महाराज इस अज्ञानता के युग में वैदिक संस्कृति का पुनः उत्थान करने में लगे हुए हैं। भारत वर्ष के विभिन्न भागों में प्रति वर्ष सैंकड़ों यज्ञ करवाते हैं। इनके योग की अनूठी क्रिया है जिसे योग में पारंगत व्यक्ति ही समझ सकता है। सांधारण व्यक्ति के लिए यह एक अचम्भा प्रतीत पड़ती है। ब्रह्मचारी जी योग मुद्रा में अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से पृथक कर लेते और जब पृथक्करण होता तो स्थूल शरीर समाधि अवस्था में चला जाता। ऐसी स्थिति में दोनों शरीरों के मध्य सदा सम्बन्ध बना रहता है। परन्तु प्राणों के संघात के कारण गर्दन दायें बायें हिलती रहती है। यह अपने सूक्ष्म शरीर को अन्तरिक्ष स्थित सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के मध्य में ले जाते और विभिन्न विषयों पर सार गर्भित वैदिक प्रवचन करते। इन्होंने अपने प्रवचनों में अनेक अंलाकारिक गुत्थियों एवं ऐतिहासिक तथ्यों की वास्तविक व्याख्या भी की है।

योग मुद्रा में ब्रह्मचारी जी महाराज का स्थूल शरीर एक यन्त्र का कार्य करता और इनके लाखों वर्षों पूर्व के शिष्य ऋषि महानन्द जी (सूक्ष्म शरीरधारी) भी इन के स्थूल शरीर द्वारा कभी कभी अन्तरिक्ष से सभी युगों का आंखों देखा हाल वर्णन करते। ३० वर्ष पूर्व घोषणा के अनुसार अपने शरीर की पचास वर्ष की अवधि समाप्त होने पर ब्रह्मचारी जी महाराज की आत्मा ने १५ अक्तूबर १९९२ को शरीर त्याग दिया।

सेठ राम प्रकाश बंसल
केसरी बाग, अमृतसर

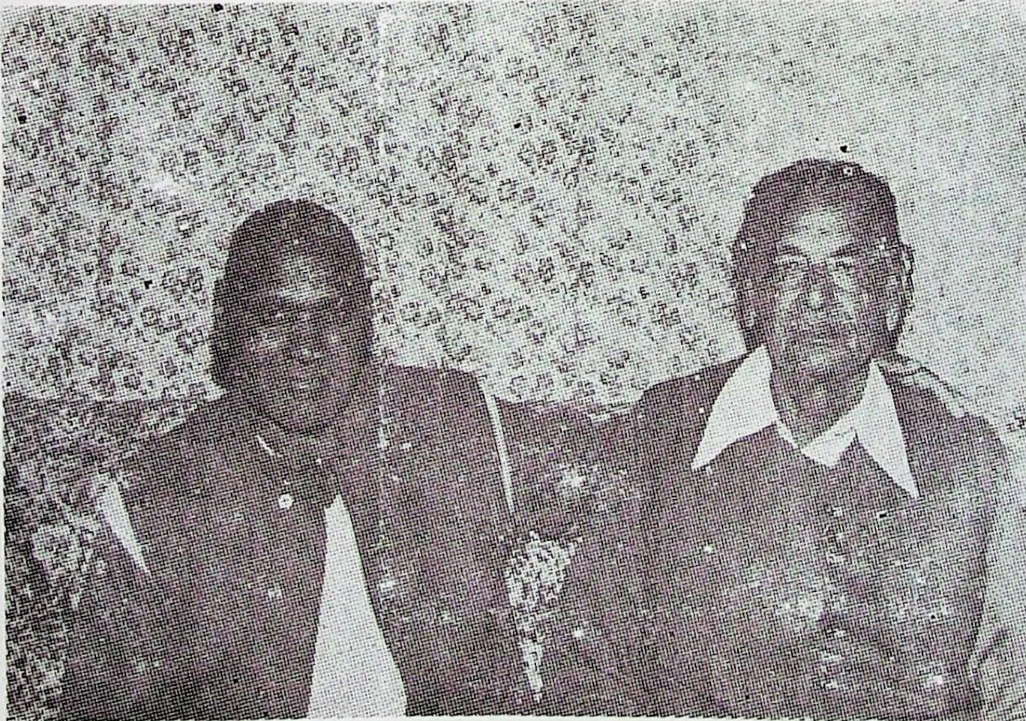
धन्यवाद एवं शुभशंसा

श्री योगेन्द्र पाल नय्यर जी अपनी दया धर्म एवं अपनी सतत् दानशीलता के कारण प्राप्त होने वाली प्रभु कृपा से इस समय (१) मैसर्ज नय्यरं एण्ड सन्ज़ और (२) मै० नय्यर बिल्डर्स ऐसोसिएट्स, चण्डीगढ़ नामक दो फर्मों से सम्पन्न हैं। ऐसा ऐश्वर्य पाने में श्री नय्यर जी की सुधर्मपत्नी श्रीमती पुष्पा नय्यर जी की दया धर्म पारायण भावनाओं ने सोने पर सुहागा का काम किया हैं

ऐसा होना स्वाभाविक था क्योंकि श्री दीवान चन्द दुग्गल जी के घर में जन्म लेकर श्री चरण दास दुग्गल एवं श्री राम नाथ दुग्गल जैसे भाईयों के संस्कार जो पाए हैं। सचमुच इस देवी की शैशव काल प्राप्त भावनाओं के अनुरूप ही इन्हें श्री नय्यर जैसे जीवन साथी मिलें हैं।

यही नहीं इन दोनों की सात्विक भावनाओं के अनुसार प्रभू ने इन्हें सन्तान भी आज्ञाकारी, दया एवं दानशील भावनाओं में रंगी हुई दी है। अत:एव यह सारा परिवार निर्वाण प्राप्त पूज्य ब्रह्मचारी जी महाराज के प्रस्तुत प्रवचन संग्रह के प्रकाशनार्थ दान देकर अपने आप को अहोभाग्य समझ रहा है। इस के लिए वैदिक प्रचार समिति इन की आभारी है और पूरे परिवार का धन्यवाद करती है और परमपिता परमात्मा से इन के लिए दैविक एवं भौतिक सुख की मंगल कामना भी करती है।

सेठ राम प्रकाश बंसल
केसरी बाग, अमृतसर



ब्र० कृष्णदत्त जी एवं श्री योगेन्द्र पाल नय्यर (चण्डीगढ़)



सेठ राम प्रकाश बंसल (अमृतसर)

जा 31295

पवमान की व्याख्या

स्थान : लाक्षागृह, वरनावा, मेरठ
दिनांक : १७.२.१९९१

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ हैं और वह एक एक कण कण में व्याप्त हैं। जितनी भी तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं उन तरंगों के गर्भ स्थल में वे विद्यमान रहते हैं। इसीलिए हमारा वेद मन्त्र मानो अपने में गान गा रहा है और उस परमपिता परमात्मा की जो अनुपमता है अथवा उसमें जो विचित्रता है वह उसका वर्णन कर रहा है। इसीलिए आज का हमारा वेद मन्त्र नाना प्रकार की आभाओं का वर्णन कर रहा है।

हमारे यहां परम्परागतों से ही नाना प्रकार के सूक्तों का वर्णन होता रहा है। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र सूक्तों में वर्णित होता रहा है। एक ही सूक्ष्म सा सूत्र है और उसी सूत्र में बेटा ब्रह्माण्ड की प्रतिभा का वर्णन है। क्योंकि परमपिता परमात्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है वह अलौकिक है और वह अपने में बड़ा पूर्णत्व को प्राप्त होता रहा है। क्योंकि सूक्ष्म सा हमारा एक वेद मन्त्र है और उसी वेद मन्त्रों में नाना प्रकार की विवेचनाएं होती रही हैं। हमारे वेद मन्त्र में मानो चन्द्र सूक्तों का एवं सूत्रों का वर्णन आ रहा था। जैसे हमारे यहां ब्रह्म सूत्र का वर्णन है, अग्नि सूत्रों का वर्णन होता रहा है, और वरूण सूत्रों का भी वर्णन है। इसी प्रकार आज के हमारे वैदिक पठन पाठन में चन्द्रमा का बड़ा विवेचन हो रहा था। क्योंकि जो चन्द्र सूक्तों का एवं सूत्रों का जो वर्णन है वह हमारे यहां याग में परिणत होता रहा है।

हमारे ऋषि मुनियों ने परम्परागतों से ही जब वे अपनी स्थलियों पर विद्यमान होते रहे हैं, तो वे नाना सूत्रों को लेकर के जब अनुसन्धान करना उन्होंने प्रारम्भ किया और वह प्रारम्भिक वाक्य यह कि "ब्रह्मणा चंन्द्रम सौ व्रक्त वरूत्म देवा:'' आज के हमारे वैदिक पठन पाठन में आ रहा था कि जब हम चन्द्रमा की उपासना करते हैं तो उपासना उसकी कई प्रकार से होती है। क्योंकि वह सोम कहलाता है और वह सोम के होने में ही अपने स्वरूप में चन्द्रमा अपने में महान है और इसका यागों से बड़ा विशेष समन्वय रहा है। जब भी ऋषि मुनि अपनी स्थलियों पर विद्यमान हुए हैं और उन्होंने अपनी स्थली पर विद्यमान होकर अन्वेषण किया कि यह चन्द्र सू है और सूत्र के ऊपर हमें विचार विनिमय करना है तो बेटा 'चन्द्रम सौ व्रक्त देवा:' यह वृष्टि यागों में वर्णित होता रहा है अथवा सोम में भी वर्णित होता रहा है।

तो चन्द्रमा जैसे हमारे यहां ऋषि मुनियों ने यह कहा है कि 'अमावेष्टि और पूणविष्टि दो प्रकार के याग हमारे यहां परमपिता परमात्मा की महति का वैदिक साहित्य में प्राय: उनका वर्णन होता रहा है। क्योंकि अमावेष्टि जो हमारे यहां याग माना गया है वह यजमान कहलाता है और जो पूणविष्टि याग है वह समावेष्टि कहा जाता है। तो आज मैं बेटा इस संदर्भ में तो नहीं जाऊंगा, क्योंकि याग के ऊपर महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपना बड़ा वर्णन किया है। याग अपने में बड़ा पूर्णत्व को प्राप्त होता रहा है। क्योंकि यागों में जहां पुरुषार्थ का वर्णन आता रहा है वहीं उसका अपनी विवेचना में बलि का भी वर्णन होता रहा है। हमारे यहां बलि को संसार ने जाना नहीं है।

ऋषि मुनियों ने उस बलि के अभिप्राय: को जाना कि बलि कहते हैं जो पुरुषार्थ प्राणी होता है, जो अपने जीवन में निष्ठावान बन करके अमावेष्टि और पूणविष्टि यागों में संलग्न होता है। जो पूणविष्टि याग करते हैं वह अपने अन्तरात्मा की जो मानवीय तरंगें हैं उनके आधार पर तरंगित होते रहे हैं और जो अमावेष्टि याग है वह हमारे यहां अन्धकार का सूचक है। वह 'अमावाप्रति' जहां: चन्द्रमा की एक भी कला नहीं होती और उस कला में मानव अपने में याग करता है और यजमान की यह भावना रहती है। वैदिक पठन पाठन की जो प्रणाली हमारे यहां मानी गई है वह बड़ी विचित्र है। परन्तु वहां यजमान

की यह भावना रहती है "अमृताम भू वरुणम" मैं अन्धकार में न जाऊं, मेरे में यदि अज्ञान आ जाए या मैं संसार के वैभव में न रह कर इससे हे प्रभु ! मैं दूरी ही चला जाऊं तो प्राय: मेरी यह भावना रहनी चाहिए कि मेरे में, मैं अपने जीवन में विकृत न हो जाऊं, मेरे हृदय में साहस बना रहे और मेरे हृदय में भावना सी बनी रहे कि मैं संसार के प्रतिभाषियों में न रत हो जाऊं। और मुनिवरो, जब पूणविष्टि आता है तो पूणविष्टि उसे कहते हैं जैसे चन्द्रमा। यहां चन्द्रमा का वर्णन है, चन्द्रमा अपनी षोडष कलाओं से युक्त होता है और वह षोडष कलाओं में यदि चन्द्रमा जब षोडष कलाओं वाला होता है तो वहां प्रकाश ही प्रकाश होता है। षोडष कलाओं का अभिप्राय: यह है कि हमारे जीवन में प्रकाश है और प्रकाश में भी हम विकृत न हो जाएं, हमें अभिमान न आ जाए। यह यजमान की यज्ञशाला में विद्यमान हो करके भावना होती है। और अन्तर्हृदय को मानो तरंगों का जो वृत्तियों में प्रादुर्भाव होता है वह ऐसा ही बना रहे।

तो बेटा, यहां चन्द्रमा का बड़ा समन्वय रहा है। यागों से बड़ा समन्वय रहा है। अमावेष्टि की प्रतिपदा से लेकर के और पूणविष्टि तक, और पूणविष्टि की प्रतिपदा से ले कर के अमावस तक, यहां शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनो इसी आधार पर आधारित हुए हैं। तो यह दोनों ही बड़े अपने में विचित्र माने गए हैं। तो विचार आता रहता है बेटा, प्रकृति का अपना एक "समूलय वृति कदम ब्रहवा:" मानो प्रकृति का एक मूल होता है, प्रकृति का अपना एक स्वाभाविक तत्व होता है कि वह अमावस और पूणविष्टि दोनों हैं, यह मानो प्रकृति के स्वरूप में पर्व माने गए हैं। इन पर्वों में मानव को किसी प्रकार का भी उग्रवाद नहीं आना चाहिए। यदि उग्रवाद आ गया है तो वह दोनों ही हानिप्रद माने गए हैं। तो इसीलिए हमारे जीवन में वह उग्रवाद नहीं आना चाहिए।

तो इसीलिए वेद कहता है कि अमावेष्टि और पूर्णविष्टि दोनों ही याग हमारे यहां सदैव पवित्रत्व में रत होते रहे हैं और उसमें यह भावना रही है कि हम द्रव्य और संसार के वैभव में आ करके हमें अभिमान न आ जाए और यदि हमें उससे हानि हो जाए तो हमें अपने में वहां भी सर्ववृतियों में रत रहना

चाहिए। वहां भी हमें अपने में निराश नहीं होना चाहिए, ह्रास्ता को प्राप्त नहीं होना चाहिए। देखो, यागों का अपने में बड़ा महत्व माना गया है। परन्तु चन्द्रमा अपनी आभा में सदैव रत्त रहता है। जब यह चन्द्रमा का अपने में "चन्द्रेस्टि अव्रत्म" देखो पूर्णविष्टि अपनी षोडष कलाओं से युक्त होता है। तो इन्ही षोडष कलाओं को जानने वाले बेटा भगवान राम इन कलाओं को क्रियात्मकता में ज़ानते थे और क्रियात्मकता में षोडष कला प्रतिपदा से लेकर के और पूर्णविष्टि तक मानो यह षोडष कला कहलाती हैं। इन कलाओं में अपना अपना महत्व माना गया है। इन कलाओं को भगवान राम ने अपने में जानने का प्रयास किया। क्योंकि वास्तव में वह राजा नहीं थे, राम अपने मे तपस्वी थे। राज्य का उन्हें वैभव नहीं था, वह सदैव तपस्या में रत रहते थे। मैं ने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा है कि वह (राम) अपने में तपस्या में रत रहते रहे हैं, क्योंकि राजा वास्तव में तपस्वी होता है और वह पवमान कहलाता है। पवमान का अर्थ ही यह कहलाता है कि वह राजा बन करके अपने वैभव में रत रह कर के भी उसे अभिमान नहीं आना चाहिए। उसे उग्रवाद नहीं आना चाहिए, इसीलिए वेद मन्त्र कहता है कि वह राजा है। राजा को पवमान कहते हैं। तो विचार आता रहता है, मैं भगवान राम की चर्चा कर रहा था। भगवान राम के जीवन में सदैव देखो राजा होने पर भी वह तपस्वी कहलाते थे।

मेरे पुत्रो ! मुझे उनका काल प्रायः स्मरण आता रहा है। यही दशा भगवान कृष्ण की थी। उन के हृदय में भी तपस्या के बड़े अंकुर रहते थे और जो तपस्वी होता है वही राष्ट्र और समाज को, जगत को ऊर्ध्वा में ले जाता है। इसलिए देखो राजा अपने में जब याग करता रहा है, याग में परिणत रहा है तो वहीं अपने में पवमान कहलाता है। तो आज का हमारा वेद मन्त्र चन्द्रमा की आभा में रत होने के लिए हमें कहता है। और यह कह रहा है "चन्द्रमसौ वरूणम ब्रह्मा: वरुस्तुत्म ब्रह्मा कृत्म:" देखो पवमान की आभा में रत रहना चाहिए।

आओ मेरे पुत्रो ! मैं तुम्हें विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह प्रकट करने के लिए आया हूँ कि हमारा वेद मन्त्र हमें क्या कह रहा

है। वेद मन्त्र कह रहा है कि हम चन्द्रमा को अपना पवमान बनाएं और चन्द्रमा सोम की वृष्टि करता है और चन्द्रमा का अपने में याग से बड़ा समन्वय रहता है। यह चन्द्रमा रसों का स्वामी कहलाता है और यह रसों का जब स्वामी होता है तो 'अमृत्म ब्रह्मा क्रत्म'' अमृत को हमें प्राप्त करना चाहिए। तो आज का हमारा वेद मन्त्र हमें यह कह रहा है कि हम चन्द्र सूक्तों का वर्णन करते हुए वेद मन्त्रों में परिणत होते चले जाएं। देखो जब हम याग करते हैं तो हमारे यागों का समन्वय चन्द्रमा से बहुत होता है, क्योंकि हम किसी भी प्रकार का याग करें, चाहे वृष्टि याग करें, चाहे अग्निहोत्र, चाहे वह अग्निष्टोम याग क्यों न करें, चाहे हम वाजपेयी यागों में रत क्यों न हो जाएं, स्र्वत्र ही चन्द्रमा का उनसे बड़ा समन्वय रहता है।

प्रत्येक मानव अपने में विचारता रहता है, अपने में अन्वेषण करता रहता है कि मानव को पुरुषार्थी बनना चाहिए और पुरुषार्थ का अभिप्राय: है कि अपनी आत्मा के अनुकूल जो भी कर्म हों उन क्रिया कलापों में इतना रत रहना चाहिए, इतना कर्तव्य पारायण रहना चाहिए जिससे अपने में अपनेपन को ही प्राप्त करके अपने में अपने को प्राप्त हो जाए। तो विचार विनिमय क्या ? आज का हमारा वेद मन्त्र यह कह रहा है कि प्रत्येक मानव को तपस्या में रत रहना चाहिए। अपनी बलि दे देनी चाहिए। बलि का अभिप्राय: मैंने कई कालों में तुम्हें वर्णन किया है कि बलि का वर्णन केवल इतना ही है कि मानव को पुरूषार्थ करना चाहिए और उसके गुणों को अपने में धारण करना चाहिए। जैसे हमारे यहां चन्द्रेष्टि एवं कुभेष्टि यागों का वर्णन है। तो कुभेष्टि यागों में यहां मानो वृषभ की बलि का वर्णन आया है।

हमारे यहां वृषभ किसे कहते हैं ? यह विचारने का प्रश्न है। हमारे यहां इसी के ऊपर अन्वेषण होता रहा है कि हम विचारें। देखो वृषभ कहते हैं, गऊ के बछड़े को। गऊ के बछड़े का यहां वर्णन है कि केवल उसको हनन करना नहीं है, उसके प्राणान्त करना नहीं है मानो उसके अनुसार वह उससे पुरुषार्थ करना है और वह पुरुषार्थी बन कर के अपनी बलि देता है। बलि का अभिप्राय: केवल पुरुषार्थ है, बलि का अभिप्राय: किसी के प्राणों को हनन करना नहीं है बल्कि हमारे यहां वृति मानी गई है। पूर्ण चन्द्रमा का सोमरस पान करने से

बहुत से मानसिक रोगों का हनन हो जाता है। जैसे हमारे यहां चन्द्रमा पूर्णमा के दिवस अन्नाद को अपने में वृत्ति बनाता है, अन्न की वृति बन करके चन्द्रमा की सर्वस कलाओं को अपने में धारण करता है।

तो सोमलता एक बूटी होती है और वह सोमलता पूर्णमा का दिवस हो, चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो और स्वाति नक्षत्र उसके साथ हो तो उस नक्षत्र में उस बूटी को हम पृथ्वी से अपनी भुजा में लाते हैं और जब उस बूटी को पृथ्वी से पृथक करते हैं, उस बूटी को जब हम खरल करते करते इतने विशुद्ध बन जाते है कि हमारा हृदय, जो रुग्ण है तो अनीमा देखो मूली देते और उसी से उसका खरल करते करते वह इतना विशुद्ध ज़लमय हो जाता कि हृदय चालीस दिवस उसे खरल करने से तो मानव के हृदय का रुग्ण भी चला जाता है मानो हृदय में हृदय की गति शान्त और अपने समान्यत्व में आ जाती है। तो विचार क्या ? मैं तुम्हें यह विचार दे रहा हूं कि सोमलता उस बूटी को कहा जाता है, जिसे सोममय भी कहते हैं और वह जल वृत्तियों में रत्त होती है।

तो विचारने से प्रतीत होता है कि चन्द्रमा सोमलताओं का स्वामी कहलाता है। जब माता के गर्भ स्थल में 'सोममब्रह्मा' जब शिशु होता है, मैं शिशु का कई समय से वर्णन कर रहा हूं, जब माता के गर्भ में शिशु होता है तो शिशु 'अमृतम देखो' उस बूटी को माता को पूर्णिमा के दिवस पान करना चाहिए। चतुर्थ दिवस पान करना चाहिए जिससे माता के गर्भ स्थल में जो शिशु है वह शिशु महान बुद्धिमान और विज्ञानवेता बन करके पृथ्वी पर यौगिक सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है। तो विचार आता रहता है बेटा, मुझे स्मरण है माता मदालसा का जीवन। और मुझे माता कौशल्या का जीवन भी स्मरण आता रहता है। जब कौशल्या के हृदय में मानो यह भावना हुई कि मैं अपने गर्भ से जिस शिशु को जन्म देना चाहूंगी तो वह महान् होना चाहिए।

तो माता कौशल्या सोमलता को मार्ग से भयंकर वनो से लाती और उसको पान करती मानो अनीमा से उसका खरल करती, अग्ने जो प्रवाह जो अमृत भी है उससे वह खरल करती रहती। उसको खरल करते करते उसके

अन्तर्हृदय में जो पुरातत्व नाम की नाड़ी है जिसका समन्वय.बालक के (शिशु के) हृदय से होता हे उससे उसकी तरंगें जा करके बालक की देखो पुरातत्व नाम की नाडी से समन्वय होकर के उस नाडी का समन्वय मस्तिष्क से होता हुआ और वहां हृदयं गमता को प्राप्त होता रहा है। तो मुनिवरो, वह माता अपने में विचित्रता को अनुभव करती है। उसके हृदय में जो शिशु के हृदय से जो विद्यमान है उसका समन्वय है वह पवित्रता को प्राप्त होता रहा है।

तो बेटा, मैं इस विज्ञान की चर्चा नहीं कर रहा हूं। विचार केवल यह है, मैं बहुत सी बूटियों का वर्णन करना, औषधियों का वर्णन करना यह आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। मैं चन्द्रमा की विचारधारा प्रकट कर रहा था कि चन्द्रमा को वैदिक साहित्य में सोम कहते हैं। यह सोम की वृष्टि करता रहता है। जो माताएं या वैद्यराज इस सोम और चन्द्रमा की उपासना करने वाले हैं या पूर्णविष्टि यागों का अपने में वर्णन करते रहते हैं तो सोम को प्राप्त होने वाले पूर्णविष्टि याग जब करते हैं तो वह प्रतिभासित हो जाते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है ये विद्याएं हमारे वैदिक साहित्य में, विद्यालयों में ब्रह्मचारियों को प्रायः प्राप्त कराई जाती थीं। जब महाराजा अश्वपति के यहां एक सभा हुई तो उसमें ऋषि मुनियों में, बुद्धिमानों और वैज्ञानिकों में यह वर्णन होने लगा कि हमारे यहां हमारा समाज कैसे ऊंचा बने। हमारे समाज में स्वर्ग या महानता कैसे आ सकेगी ?

तो महाराजा अश्वपति के यहां बेटा हम तो पुरोहित थे और उस पुरोहित का नामकरण रेति मुनि महाराज था। तो रेति मूर्तिमान मुनि महाराज ने अपना वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा कि यदि समाज को ऊंचा बनाना है तो चन्द्रमा के पूर्णविष्टि और यह अमावेष्टि यागों का हमें चयन करना चाहिए। प्रत्येक मेरी प्यारी माता जब पूर्णविष्टि और अमावेष्टि दोनों को दोनों याग में अपना समन्वय चन्द्रमा से कर लेती है, तो वही चन्द्रमा का कर्म है। मानो साकल्य में (चरू में) प्रविष्ट हो जाती है। हमारे यहां जो भी अग्नि देवताओं का मुख है वहीं उसमें चरू प्रदान करने का व्यवधान कहा गया है। वह चरू क्या है ? देखो उसमें मद्यमान है और पुष्टिकारक है और विरूतु है। इन दो प्रकार की औषधियों को ले करके और अन्नाद को लेकर के हृष्ट पुष्ट,

रोगनाशक, अमरितियों को प्राप्त होकर के जब वह याग करता है या अमावेष्टि और पूणविष्टि दोनों यागों को अपने में धारण करता है वह अपने में महान बनता है। और मेरी पुत्रियां महान बनती हैं।

तो बेटा, विद्यालयों में इन यागों का वर्णन होना चाहिए। तो यह केवल मानो अग्नि होत्र के द्वारा तो होना ही चाहिए, परन्तु यह विचारों में भी आ जाना चाहिए। और क्रियात्मकता में भी आ जाना चाहिए। जब मेरी प्यारी माताओं के गर्भ से महान पुत्रों का जन्म होगा तो वे आगे चलकर तपस्या से योगेश्वर बन करके इस राष्ट्र को उन्नत बना सकते हैं। मुझे तो बहुत काल हुए जब महाराजा अश्वपति के यहां इस प्रकार का व्यवधान बना, इस प्रकार की विचारधारा आई। तो यह विचार धारा प्राय: पुत्रियों के हृदयों में पहुंची, ब्रह्मचारियों के हृदय में पहुंची, आचार्यों के हृदय में पहुंची और राजा अश्वपति ने इसका एक नियम बना लिया कि विद्यालयों में जो सूत्र हैं, चन्द्र सूक्त हैं इनका पठन पाठन होगा।

और इनका जो व्यवहार (क्रिया) है उसका वर्णन होगा तो वैज्ञानिकजन इसके ऊपर अन्वेषण करते रहे। इस प्रकार के विज्ञानवेता रहे हैं कि जो चन्द्रमा से तरंगों का प्रादुर्भाव होता है, जो रात्रि को अपने गर्भ में धारण करा लेता है वही चन्द्रमा की जो कान्ति है, वह अपने में अन्धकार को धारण कर लेती है। इसी प्रकार नस नाडियों में माता के हृदयों में माता के रसना के अग्रभाग में ऐसा मन्त्रों का जपन होना चाहिए जिससे प्राण से उनका समन्वय होना चाहिए और व्यान प्राण की पुट लग कर के जब माताएं इस प्रकार के विचारों से अपने गर्भ में होने वाले शिशु को स्वीकार करके उसको अपनी भावना प्रदान करती है। वेद मन्त्रों से चन्द्र सूक्तों का वर्णन करा देती है जिससे वह शीतल बन करके बुद्धिमान बन करके संसार को महान विज्ञान की आभा को प्रदान करा देती है। क्योंकि तुम्हें यह प्रतीत होगा जब वैज्ञानिक जन चन्द्रमा को यह स्वीकार करते है कि यह सूर्य की नाना प्रकार की किरणों से प्रकाश लेता है तो वही प्रकाश को वह शीतल बना देता है, वही ऊर्जा है, वही शीतल है। तो ऊर्जा वाली कैसे कान्ति पहुंची अथवा वह किरण पहुंची उसको शीतल बनाना, उसको माधुर्य बनाना और पौष्टिक बनाना और प्रकृति के

आवेशों को जान करके वह गमन करा देते हैं। तो मुनिवरो, यह चन्द्रमा का कितना वृत कहलाता है। तो यह सोम कहलाता है। इसी सोमरस को बेटा, योगीजन जब रात्रि का समय होता है तो रात्रि के समय जिव्हा को अपने दांतों से उसको दमन करके जब चन्द्रमा की आभा को अपने में धारण करते हैं तो वनस्पति विज्ञान को जानने लगते हैं, वनस्पति विज्ञान में रत हो जाते हैं। अग्रभाग में बेटा, शीतली प्राण को लेकर देखो उसको सूर्य प्राण से समन्वय करते हुए अपने में जल को सिञ्चन करते हैं। तो बेटा वहां नाना प्रकार की वनस्पतियों का ज्ञान विज्ञान उन्हें प्राप्त हो जाता है।

आओ बेटा, मैं दूरी नहीं जाना चाहता हूं। मैं केवल अपने यहां जो ऋषि मुनियों का अपना मन्तव्य रहा है उसको मैं वर्णन करता रहता हूं। ऋषि मुनियों में बेटा कोई विद्या ऐसी नहीं जो उनके मस्तिष्कों में अथवा उनके हृदयों में ग्राहिस न बनी हो और उसका वह वर्णन न करते रहे हों। तो विचार विनिमय क्या ? महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में यह घोषणा हुई क्योंकि राजाओं का यही कर्तव्य रहा है कि समाज को कैसे उन्नत बनाया जाए। यदि इसमें विकृति आ गई है तो कैसे उन्नत हो। इस प्रकार की विचार धाराओं को लेकर के महाराजा अश्वपति समय समय पर यागों का वर्णन करते रहे हैं अथवा याग में परिणत होते रहे हैं।

तो मुनिवरो देखो, वह अमावेष्टि और पूणविस्टि यागों का वर्णन करते हुए उनके यहां प्रायः ऐसे क्रिया कलाप होते रहे हैं और यह घोषणा रही कि प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए और प्रत्येक गृह में अपने में अपनेपन और विद्यालयों में ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारणियों को इस प्रकार की विद्या होनी चाहिए जिससे उनके जीवन में सामाजिक और आत्मिक उन्नति होती रहे। और उन्नत होना ही उनका कर्तव्य है। तो मैं तुम्हें यह विचार दे रहा हूं कि चन्द्रमा अपने में महान और पवित्र कहलता है। "चन्द्रमां ब्रवहो कृत्य" इसलिए अमावेष्टि और पूणविष्टि यागों का वर्णन हमारे प्रायः वैदिक साहित्य में होता रहा है क्योंकि यजमान पवमान कहलाता है इसीलिए चन्द्रमा को भी पवमान कहते हैं। क्योंकि चन्द्रमा को देखो यजमान कहते हैं इसलिए सूर्य को भी यजमान कहा जाता है।

यह सूर्य यजमान इसलिए है कि सूर्य ऊर्जा को अपने में प्रदान कर रहा है। उसी उर्जा से अपने में मानो ऊर्जा देकर के प्रकाशमान बना रहा है। रात्री को अपने गर्भ में धारण कर रहा है, चन्द्रमा को अमृत दे रहा है। प्रतिपदा से लेकर के बेटा, ऐसे नक्षत्रों का एक दूसरे से समन्वय रहता है कि उतनी ही कान्ति चन्द्रमा में जाती है। जैसे अमावस के पश्चात प्रतिपदा आती है, प्रतिपदा के पश्चात द्विपदा आती है। द्विपदा के पश्चात तृतीया आती है, तृतीया के पश्चात चतुर्थ और चतुर्थ के पश्चात पंचम। इसी प्रकार प्रत्येक अपनी अपनी आभाओं का वर्णन हमारे यहां प्राय: वैदिक साहित्य में है। बेटा, प्रतिपदा की जो किरणें हैं उनके द्वारा कैसे माता अपने गर्भ के शिशु को ऊंचा बनाना चाहती है, तो माता का मन मस्तिष्क और नाभी केन्द्र से प्रतिपदा में उनका कृत्य रहना चाहिए।

बेटा यह तो बड़ा विशाल विज्ञान है। मैं इस विज्ञान को वर्णन करने नहीं आया हूं, केवल परिचय देना यही मेरा मन्तव्य रहता है। हमारा परिचय यही है कि विद्यालयों में इस प्रकार की विद्याओं का वर्णन होना चाहिए और इस प्रकार की विद्याओं को ले करके जो मानव गमन करता है तो वह इस संसार में महानता को प्राप्त होता रहा है, मेरी प्यारी माताओं का यहां सहयोग रहा है राष्ट्र और समाज को उन्नत बनाने में। यदि माता का बालक अभिमानी हो गया है तो अभिमान में अभिमन्त कहलाता है। तो यह माता का दोषारोपण कहलाता है। माता यदि तपस्वी बालक को जन्म देना चाहती है तो स्वयं तपश्चर को प्राप्त हो करके अपने में महानता को प्राप्त करा देती है। तो मैं तुम्हें विचार विशेष नहीं देना चाहता हूं। विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए और इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा है ? देखो हमारे यहां दो प्रकार के यागों का विशेष वर्णन आता रहा है अमावेष्टि और पूणविष्टि। इनकी पूर्ण रूप से मैं विवेचना नहीं कर सका हूं। कल मुझे समय मिलेगा तो चन्द्र सूक्तों का और वर्णन करेंगे। और जो उसमें प्रतिभाषित आता रहेगा उसका वर्णन करेंगे। आज का वाक्य बेटा, हमारा यह कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा

की आराधना करते हुए, हम देव की महिमा का वर्णन करते हुए हम अपने जीवन में पुरुषार्थी बने और देवत्व की प्रत्येक आभा को जानने वाले बने। परमात्मा का जो सृष्टि चक्र है यह बड़ा विचित्र है। मन मस्तिष्क को एकाग्र करके जब अध्ययन करते हैं तो देखो अध्ययन की शैली पवित्र बन जाती है।

जब ब्रह्मचारियों को आचार्य अध्ययन कराता है तो वह गम्भीरता से अध्ययन करता है और वही विचार में आता है। तो मन मस्तिष्क से देखो मन कर्म वचन वे तीनों एकाग्र करके वह आत्मा के समीप जाता है तो आत्मा उसे मार्ग दे देती है। आत्मा मन को आज्ञा देती है कि प्रकृति के गर्भ में से जा कर के तू वह प्रकृति के गर्भ में से बटा उसको जो भ्रान्ति लग गई है उसका स्पष्टीकरण करा देता है। तो बेटा विशेष चर्चा नहीं। उसी को जब विद्यालय में ब्रह्मचारियों को अध्ययन कराता है तो मन मस्तिष्क की विवेचना बड़ी विचित्र है। मुझे समय मिलेगा तो में शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य हमारा समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पठन पाठन होगा, इसके पश्चात हमारा वाक्य समाप्त। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय: कि अमावेष्टि और पूर्णविष्टि की चर्चा कल भी करेंगे। आज का विचार केवल इतना ही कि शेष चर्चाएं कल। अब वेदों का पठन पाठन होगा। वेद पाठ।

ॐ

अन्नाद का महत्व

स्थान : लाक्षागृह, वरनावा, मेरठ
दिनांक : १८.२.१९९१

जीते रहो।

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि हमारे यहां ज्ञान और विज्ञान की वार्ताएं सदैव प्रारम्भ होती रही हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में मन की तरंगें तरंगित होती रहती हैं और उन्हीं तरंगों के आधार पर मानव जब भी शान्त मुद्रा में होता है तो प्राय: वह ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ने लगता है और ज्ञान और विज्ञान उसका एक मोलिकत्व बन जाता है। तो इसी लिए हमारा वेद का मन्त्र यह कह रहा है, हे मानव ! तू ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़। और उसको क्रियात्मक रूप देकर के समाज और मानवत्व को उर्ध्वा में गमन कराता हुआ और अपने में भी उर्ध्वा को प्राप्त होने का प्रयास कर। तो वेद का मन्त्र, वेद का ज्ञान बड़ा अनुपम माना गया है क्योंकि मानव जब इसके ऊपर विचार विनिमय प्रारम्भ करता है और विचारता रहता है तो उर्ध्वा में अपने को ले जाता है। हमारे यहां प्रत्येक वेद मन्त्र अपने में महानता का प्रदर्शन कर रहा है।

आओ मुनिवरो, आज का हमारा वेद मन्त्र हमें क्या प्रेरित कर रहा है, उसी रूप में आज मैं तुम्हें ले जाने के लिए आया हूं। क्योंकि हमारा वेद का मन्त्र मानो वही चन्द्र सूक्तों का सूत्रों का वर्णन कर रहा था कि यह जो चन्द्रमा है यह अपने में महान और सोममय कहलाता है। यह रात्रि का पति है और इसके बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। जैसे हमारे यहां चन्द्रमा को सोम कहते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा को गौतम भी कहा जाता है और जब हम चन्द्रमा को गौतम

कहते हैं तो यही वनस्पतियों का स्वामी और निधित्व करने वाला है, यही चन्द्रमा कान्ति के रूप में उदय होता है, यही चन्द्रमा है जो उषा के रूप में मानो यही चन्द्रमा है जो प्रतिभा के रूप में परिणत होता रहा है। तो इसके नाना पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु एक पयार्यवाची शब्द की मैं तुम्हें विवेचना देने के लिए आया हूं कि चन्द्रमा को हमारे यहां गौतम कहा जाता है जो रात्रि का स्वामित्व करता है, रात्रि का जो अन्धकार है अथवा रात्रि के उस अन्धकार रूपी श्रृंगार को वह अपने गर्भ में धारण कर लेता है। तो वह धारयामी बन जाता है। तो उसे हमारे यहां गौतम कहा जाता है। गौ नाम चन्द्रमा का है और तम नाम रात्रि का है। दोनों का जब सम्मिलन होता है तो यह रात्रि अन्धकार के स्थान से प्रकाश में परिणत हो जाती है। और यह रात्रि को किस किस प्रकार से अपने गर्भ में धारण करता है, यह मानो प्रतिपदा से लेकर के और पूर्णमा तक यह चन्द्रमा पूर्ण रूपेण बन जाता है। तो यह पूर्ण गौतम के रूप में "गौस्वामन ब्रह्मा:'' यह अपने में उसे प्रकाश में कर देता है।

बेटा, परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का सृजन किया तो वह इतना विज्ञानमयी है कि उसको मानव अपने में विज्ञान की तरंगों में भी तरंगित नहीं कर सका। सृष्टि के प्रारम्भ से विज्ञान के ऊपर मानव नाना प्रकार की उड़ाने उड़ता रहा है। कहीं प्राण के माध्यम से, कहीं विज्ञान अग्नि की धाराओं में रत होता रहा है। परन्तु जब हम चन्द्रमा के विज्ञान में प्रवेश करते हैं तो यह चन्द्रमा अपने में अभ्युदय हो जाता है। मुझे स्मरण आता रहा है कि हिमालय की कन्दराओं में शिव नाम के राजा रहते थे। रावण के वंशजों में भी उनका बड़ा सौभाग्य रहा है कि उनको ऊर्ध्वा बनाने में। परन्तु देखो वह "चन्द्रमा मस्तिकाम भू वरूणम'' जब अपने मस्तिष्क पर उनका एक ताजा व्रत रहता था जो राष्ट्र की ध्वजा होती है, राष्ट्रीय वृति रहती है। तो उस राष्ट्रीय वृति में मानो उनके चन्द्रमा का एक आकार बन जाता था। वह चन्द्रमा का आकार क्यों बना है ? इसके ऊपर महाराजा शिव बड़े अनुसन्धान करते रहे और अनुसन्धान करने से उन्हें यह प्रतीत हुआ, उन्हें यह अनुभव हुआ कि यह जो चन्द्रमा है इसके ऊपर मुझे विचार विनिमय करना चाहिए। जब वे अनुसन्धान करते रहे और महर्षि विभण्डक मुनि महाराज की उन्होंने सहायता ली और

विभाण्डक मुनि से कहा कि हे प्रभु ! मैं चन्द्रमा के विज्ञान में रत रहना चाहता हूं। उन्होंने कहा कि प्रभो, चन्द्रमा से क्यों इतना आप का सम्मिलन हुआ है मानो उस से वृतियों में और आभा में रत रहने के लिए आपकी प्रेरणा क्यों जागरूक हुई है ? तो महाराजा शिव ने कहा प्रभु ! न प्रतीत परन्तु ऋषिवर मेरे अन्तर्हृदय में यह प्रेरणा जागी है और जागरूक होकर के मैं यह अवश्य उच्चारण कर रहा हूं कि मैं यह अपने में जानना चाहता हूं कि इसमें क्या रहस्य है, क्या विज्ञान है, और क्या इसमें रूत से पान (भेद) कहा जाता है ? विभाण्डक मुनि ने कहा कि यह जो चन्द्रमा है, सबसे प्रथम इसका नाम सोम कहलाता है और यह सोमलता को देने वाला है। यह जो रात्रि है जब प्रतिपदा का दिवस आता है तो प्रति पक्ष में चन्द्रमा की एक इकाई उत्पन्न होती है और वह सूर्य से वृहस्पति के और अरून्धति मण्डल से होती हुई वह सूक्ष्म सी किरणें चन्द्रमा पर जाती हैं। तो चन्द्रमा का अरून्धति मण्डल से समन्वय हो गया है और इसीलिए चन्द्रमा की रात्रि में हमारे ऋषिजन उस अपनी आभा को कान्ति को अपने में धारण करते रहे हैं। तो महाराजा शिव इसको धारण करते रहे। जब द्वितीय पद आई तो वही जो सूर्य से वहां एक किरण चलती है वह किरण चलकर वशिष्ठ मण्डल में प्रविष्ट होती हुई चन्द्रमा की इकाई बन जाती है। और दो इकाई बन करके उसका वशिष्ठ मण्डल से समन्वय हो गया, इसलिए चन्द्रमा को वशिष्ठ कहते हैं क्योंकि वह सोम है। चन्द्रमा ब्रह्मज्ञान में, जो ब्रह्मज्ञानी होता है उसे वशिष्ठ कहा जाता है। राष्ट्रवेताओं में जो शिरोमणि होता है उसका नाम भी वशिष्ठ कहलाता है और आत्मा का नाम भी वशिष्ठ कहा जाता है। वशिष्ठ कहते हैं जो अपने में शिरोमणि हो। जो हमारे अन्तरात्मा में विद्यमान है वह वशिष्ठ आत्मा है क्योंकि यदि वशिष्ठता में आत्मा न हो तो शरीर न रहेगा। जैसे स्वाहा का नाम भी वशिष्ठ है। वशिष्ठ नाम स्वाह को कहते हैं जैसे यज्ञशाला में जब यजमान विद्यमान होता है और वह जो स्वाहा उच्चारण करता है तो वह वशिष्ठ कहलाता है। और वशिष्ठ क्योंकि वह यजमान का आत्मा होने से, यजमान का वशिष्ठ होने से वशिष्ठ की आभा में रत हो जाता है और वह स्वाहा शब्द भी वशिष्ठ कहलाता है। क्योंकि स्वाहा: का अर्थ है जाग वृतियां और निःस्वार्थता उसमें विद्यमान होती है तो वही द्यौ

में प्रवेश करता रहा है। तो विचार विनिमय क्या ? मैं इस संदर्भ में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूं।

बेटा ! विचार विनिमय क्या हम केवल यहां उद्गीत गाने के लिए आए हैं कि हमारे यहां चन्द्रमा का नाम भी वशिष्ठ है और यह चन्द्रमा अपने में स्वाहा को धारण करता है और धारण करके अपनी आभा प्रदान कर देता है। वह सोम देता है और सोम को पान करके मानव अपने में धन्य हो जाता है। जैसे 'अमृताम ब्रह्मणे' जब वर्षा ऋतु आती है उसके पश्चात शरद काल आता है। कृषक इस मानव ब्रह्म देखो वह उस समय वाजपेयी याग करता है और वाजपेयी याग करके वह कृषक इस पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना करता है और चन्द्रमा उसमें सोम दे देता है। जब चन्द्रमा सोम देता है तो सोम उस अन्नाद में भरण हो जाता है। पृथ्वी अपने में उसे धारण कर लेती है। वही सोम अन्न में विद्यमान हो जाता है और जब अन्न को सोम बना कर के मानव पान करता है, तो बेटा वह मानव स्वयं सोम हो जाता है।

बेटा, मुझे स्मरण आता रहा है कि वहां गमन करने वाले महाराजा शिव जिस समय तपस्या में परिणत होते तो उनसे राष्ट्र का पालन नहीं हुआ करता। जब राजा स्वतः तपस्वी हो जाता है और वह वैज्ञानिक बन जाता है, वह कर्मठ बन जाता है तो वहां राष्ट्र का पालन नहीं होता, वहां राजा स्वतः उसका जो क्रियाकलाप है वही उसका पालन है और प्रजा उसके अनुसार अपने राष्ट्र को बरतने लगतीं है, तों राष्ट्र पवित्र बन जाता है। राष्ट्र जब भी भ्रष्ट होता है जब राष्ट्र में तपस्या नहीं होती और राष्ट्र देखो अतपस्वी बन जाता है और दूसरों के वैभव को अपने में संग्रह करने लगता है, या तो वह प्रजा को अपने में संग्रह करने लगता है तो उन्हीं प्रजाओं में एक एक पुरुषों का प्रादुर्भाव होता है जो राष्ट्र की निन्दा करने लगता है और राष्ट्र को निन्दित करता हुआ वह राष्ट्र को ऐसे मार्ग पर ले जाता है जो अपने में निन्दनीय बन करके राष्ट्र अन्धकार में परिणत हो जाता है, अज्ञान में रत हो जाता है। अन्धकार आ जाता है और वह कर्तव्यवादी न रह करके अपने में अपनी वाक्य वृतियों को प्राप्त करने लगता है। और जब राजा स्वतः तपस्वी होता है और वह दो बिन्दुओं में रमण करता है तो वह अपने मस्तिष्क पर चन्द्रमा का आकार

बनाता है। हमारे यहां यौगिक साहित्य में यह कहा गया है, जब योगिक मन्त्र स्मरण आते हैं तो उनमें यह आता है कि चन्द्रमा आकार रूप में जब लघु मस्तिष्क के ऊर्ध्वा भाग में वह परिणत है, वह निहित है क्योंकि चन्द्र वायु वृति नाम की एक नाड़ी होती है और नाड़ी में चन्द्रमा की कान्ति आती है, चन्द्रमा दो आकार वाला होता है। जैसे दो वृतियों में चन्द्रमा रत करता है, द्वितीया में तो ऐसे आकार वाला वह चन्द्रमा होता है। चन्द्र नाड़ी होती है उस नाड़ी का सम्बन्ध मस्तिष्क में होता है। वह द्वितीया को चन्द्रमा को अपने में धारण कर लेता है। धारण करके वह माता के गर्भ स्थल में आ मानवीयत्व में उसको अपने में धारण करता है। इस सम्बन्ध में यौगिक साहित्य में यह कहा है कि चन्द्रमा का दर्शन अन्तरात्मा के प्रकाश में उस नाड़ी के माध्यम से चन्द्रमा की कान्ति जैसे आती वह उसे और नड़ी का दोनों का दर्शन करना चाहिए। जब वह दर्शन करता है तो वह चन्द्रमा को सिद्ध कर लेता है। इसी प्रकार भगवान शिव ने चन्द्रमा के आकार को दृष्टिपात करते हुए वह चन्द्र वर्चोसि क़हलाते थे। तो इसीलिए "ब्रह्मणा वर्णम देवाः" वह जो शिव का वर्णन आता है वह उसी सोम को पान करता है उसी से चन्द्र नाम की नाड़ी को शुद्ध करने वाला सोम को विष रूप में और विष को भी सोम रूप में परिवर्तित कर देता है। जैसे मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय दिया था कि शिव विषधर कहलाता है। वह विष को पान कर लेता है और अमृत को देने लगता है। तो वही हमारे यहां शिव नाम राजा और योगी को कहा जाता है और वैज्ञानिक का नाम भी शिव कहलाता है। राजा में तीन प्रकार के गुण होने चाहिए। वह तपस्वी भी हो, वह तपश्चर वन करके वह शिवम् ब्रह्मणा वृत्य' राष्ट्र का पालन करने वाला हो। राष्ट्र अपने में जब क्रियात्मक राजा स्वतः क्रिया कलापों में प्रवृत्त हो जाता है तो वह प्रजा का संहार नहीं कर पाता। वह प्रजा को सदैव एक महानता देता रहता है, ओजस्वी बनाता रहता है। उसकी प्रजा में रक्त भरी क्रान्ति नहीं होती, वहां सोममयी क्रान्ति हो जाती है। वहां राष्ट्र का प्रत्येक प्राणी सोम में प्रवृत्त हो जाता है। महाराजा शिव का जो जीवन रहा है, वह तपोमयी रहा है। और तप होने से वह विज्ञानवेता होता है। राजा को ज्ञानी होना चाहिए, ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए और विज्ञानवेता होना चाहिए। क्योंकि बिना विज्ञान के आत्मवेता नहीं बनता। आत्मवेता बनने के पश्चात प्रभ की सष्टि को जान

लेता है और वह निस्वार्थ और कर्तव्यवादी बन करके ही राष्ट्र और समाज को उन्नत बनाता है।

आज मैं तुम्हें दूरी नहीं ले जा रहा हूं। विचार केवल यह कि यह जो द्विपदा दो इकाई वाला जो चन्द्रमा है इसे हमें जानना चाहिए। त्रिवर्धा (तृतीया) में जब तीन इकाई में पहुंच जाता है, तो तीन वृत्त और तीन प्रकार के परमाणु उसमें जो गमण करते रहते हैं तो वह उन तीन प्रकार के परमाणुओं में गमण करता है। और तीन प्रकार के परमाणुओं में सर्वत्र विज्ञान निहित रहता है। जब त्रिवर्धा बन जाता है तो वह त्रिवृत कहलाता है। तो विचार आता रहता है कि चन्द्रमा की द्विपदा हैं और द्विपदाओं के द्वारा अपने में रत हो जाता है। मैं उच्चारण कर रहा था कि जब शरद्काल आता है तो उसके पश्चात जब हेमन्त ऋतु आती है। हेमन्त कहते हैं बेटा, जहां ज़ल में से देखो तरंगों का प्रादुर्भाव होता है। वही जल शीतल बन करके वही जल वायु में प्रवेश करता है तो वायु अपने में शीतल बन जाती है और वह शीतल बन करके अन्नाद को अमृत देती हैं। उसका जो चन्द्रमा से समन्वय रहता है वही चन्द्रमा त्रिवर्धा में ओत प्रोत हो कर के हेमन्त ऋतु में प्रविष्ट होता हुआ कृषक का वह जो अन्नाद है, वह जो मानव का अन्नाद है वह पवित्रत्व को प्राय: प्राप्त होता रहा है। तो मैं इस सम्बन्ध मे विशेष विवेचना न देता हुआ केवल यह कि शरद् ऋतु के पश्चात ग्रीष्म आता है वह सोममय है, वह सोम कहलाता है। वह जल के द्वारा आता है। वह आपो के द्वारा आकर के इस संसार को सोम बनाता है। वह कृषक के अन्न में सोममय बन करके वशीभूत हो जाता है और अन्न का पिण्ड बन जाता है। अन्न का पिण्ड बन करके ही उस अन्नाद के पिण्ड को पिण्डम वृक्त करते हुए (गाहते हुए) उसका विच्छेद करते हुए पिण्ड के द्वारा मेरी प्यारी माता पिण्ड को नष्ट करके पिण्ड का निर्माण करती है। पिण्ड क्या है अन्नाद है और नष्ट करना दिखना है। और घोषणा से तपाती है और तपा करके उसे जब पान करते हैं तो वह अमृतमयी कहलाता है। उससे मन वचन और कर्म महान बनता है। इसीलिए मन विचार उसमें रत हो जाता है।

देखो यह पिण्ड बना है, पिण्ड में कहीं जल की आभा है, कहीं पृथ्वी के गर्भ में सोममय बन करके चन्द्रमा अपने क्रियाकलापों को कर रहा है। तो वह

पिण्ड बन गया है और पिण्ड बन करके अन्न के रूप में परिणत हो गया है और वही पिण्ड को, उसी को, जब योगीजन उसका दुग्ध बनाते हैं तो वह दुग्ध ाहार करते हैं, उसे अग्नि में तपा कर पान करते हैं। कोई साधना करना चाहता है, जब हम अपने पूज्यपाद गुरूओं के द्वारा अध्ययन करते थे तो मेरे पूज्यपाद उस जल को और अन्न को लेकर के सायंकाल जल में उसे वृत करते और प्रात:कालीन उसको खरल करते, खरल करके उसका पान करते थे। उसे अग्नि में तपा कर भी पान किया जाता है और उसको प्रत्येक ऋतु में ऋतुवृत बनाया जाता है। जब उसका ऋतु पिपाद बनता है जो शरद् ऋतु में बनाया जाता है, तो उसमें शरद् तरंगें उत्पन्न होकर के वह उसमें प्रवेश करती हैं क्योंकि जल का अन्न का दोनों का समन्वय है। तो अन्न का पिण्ड बना है वह पिण्ड जल में है और जब प्रात:कालीन उस पिण्ड को जल में खरल कर दिया जाता है, वह दुग्ध के रूप में हो जाता है, आपो के रूप में हो जाता है। उसे साधक जन अब अग्नि में तपाते हैं तो शीतिली प्राणायाम उन्हें सिद्ध हो जाता है। उसी अन्न का पिण्ड बना करके मेरी प्यारी माता और भी उसमें साकल्य का मिलन करा देती है, वही मानव के शरीर में प्रवेश हो करके वह विशेष वीर्यत्व को प्राप्त होता है और उसी पिण्ड को खरल बना करके और उसे पृथ्वी में तीन दिवस तक दबा करके उसके पश्चात उसे पान किया जाता है तो वह वीर्यत्व ही क्या बुद्धि वर्धक भी कहलाया गया है।

वही अन्नाद भिन्न भिन्न रूपों में परिणत होता रहा है। उसी अन्न को साधक जन अब अपने में एकान्त स्थली में उसका खरल बना करके उसमें बहुत सी सोमलताओं को मिलान कर दिया जाता है तो साधक का जो प्राण है, अपान है इनके मिलन में सहायक हो जाता है। ब्रह्मरन्ध्र में वह जो अपनी अन्तरात्मा का दर्शन करता है तो ब्रह्माण्ड का उसे साक्षात्कार दृष्टिपात आने लगता है। तो इसको मैं कहां तक वर्णन करूंगा। यह तो एक बड़ा विशाल विचार है, बड़ा विशाल ज्ञान है और यह विज्ञान की प्रतिभा है कि हम अन्न को किस रूप में पान करते हैं। एक मानव अन्नाद को विष बना देता है, एक मानव है जो अन्नाद को अपनी आत्मा जान करके उसे स्वीकार करता है। एक मानव ऐसा है जो ब्रह्मज्ञानी बनना चाहता है, वह अन्नाद को वायु से अपने

में सिंचन करने लगता है। और वायु में 'जब वे प्रव्हे' वायु के परमाणु जब अन्तर्हृदय में प्रवेश हो जाते हैं तो वह साधना में सिद्ध हो जाता है।

तो विचार क्या ? वही अन्नाद जब उसको सूर्य की किरणों में तपाते हैं और रात्रि को चन्द्रमा की कान्ति में तपाते हैं और जब उसको खरल कर दिया जाता है तो वह सोम बन जाता है, उसे सोम कहते हैं। फिर सोम बन जाने पर मानव उसे पान करता है तो वह व्याख्याता ब्रह्मज्ञान की बहुत सी ग्रंथियों का स्पष्टीकरण कर लेता है। तो विचार आता रहता है, वही अन्न पिण्ड कैसे बना है ? यह भी विचारना है कि चन्द्रमा का अमृत प्राप्त हुआ है। सूर्य की किरणों ने पृथ्वी को तपाया है, पृथ्वी ने उसे अपनी आभा प्रदान की है और वह जो जल है वह उसमें आपो के रूप में परिणत रहता है और आपो के रूप में रह करके ही "अमृताम भू वरूणम ब्रह्मा वृत्म लोकाम हिरण्यसम वृथाहा:" वही हिरण्य वृत्त बन करके मेरी प्यारी माता जब पान करती है तो वह सोम बन जाती है।

माता के गर्भ में एक शिशु है अथवा आत्मा है। शिशु को ऊंचा बनाना चाहती है। तो मेरी प्यारी माता जब अन्न को भोजनालय में तपाती है और तपाकर उसे यह जानना है कि वह अपने शिशु को कैसा बनाना चाहती है, चन्द्र औषध में ले जाना चाहती है। क्या उसे बनना है ? कैसा बनाना है ? तो उसी प्रकार का विचार और उसी प्रकार के अन्न को तपा करके उसी प्रकार उसका साक्ल्य एक दूसरे में परिणत करके बेटा उसे पान करती है। मेरी प्यारी माता उसे पान कराती रहती है। मुझे स्मरण आता रहता है जब माता कौशल्या के गर्भ स्थल में आत्मा विद्यमान था, राम जैसा शिशु विद्यमान था, तो माता कौशल्या ने अपने मन ही मन में यह विचारा कि मुझे क्या करना है। तो एक समय वह अंगिरस गोत्र में एक ऋषि थे उनके द्वार पर पहुंची और कहा हे ऋषिवर ! आपने मेरा पुत्रेष्टि याग किया और मेरे गर्भ स्थल में शिशु का प्रवेश हो गया है। अब मैं क्या करूं ?

उन्होंने कहा तुम महर्षि श्रृंगी के द्वारा पर जाओ और उनसे प्रश्न करो। मैं इस सम्बन्ध में इतना नहीं जानता हूं। तो माता कौशल्या नें श्रृंगी

ऋषि के द्वार पर जा करके यही प्रश्न किया। तो उस समय उन्होंने कहा 'ब्रह्मणम ब्रह्मा: कृत्य'' हे दिव्या, तुम ने अपने गर्भ में शिशु को कैसा बनाना है ? तो तुम त्याग तपस्या वाले अन्न को ग्रहण करो और त्याग तपस्या वाला अन्न वह है कि जिन विचारों से तुम अन्न को भोजनालय में तपाओगी और जिन विचारों का वह अन्नाद होगा मानो उस को तपा कर उसे पान किया जाए, उसी अन्नाद में जो जा रहा है उसी में माता के गर्भ स्थल में देखो पिण्ड का निर्माण होता है। मेरे प्यारे, प्रभु कितना विज्ञानवेता है। वही पिण्ड चन्द्रमा की किरणों से, वही सूर्य की ऊर्जा से, वही वायु की गति से, वही अग्नि की उष्ण शक्ति से, वही पृथ्वी के अवृति में पिण्ड बनता है, अन्न के रूप में पिण्ड आ जाता है। उस में जल का सहयोग है, अग्नि का सहयोग है और चन्द्रमा, सूर्य और समुद्रों का सहयोग है और ऋतुओं का भी सहयोग है।

बेटा, वह नाना साकल्य बन करके एक पिण्ड बन गया है जो अन्न के रूप में पिण्ड आया। माता ने उसी पिण्ड को भिन्न भिन्न रूपों में खरल करके उसी का पान किया और उसी से इस मानव शरीर के पिण्ड का निर्माण हो गया। वाह रे प्रभु ! तू कितना विज्ञान वेता है। जब मैं तेरे विज्ञान की प्रतिभा में रत होता हूं तो हे प्रभु ! कोई मेरे अन्तर्हृदय में अथवा मेरे आतमत्व में कोई वृतियां प्राप्त नहीं हुईं। तो मैं विचार विशेष न देता हुआ केवल यह कि आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा है ? वेद के ऋषि ने भी बेटा अपने हृदय के मानो स्पष्टीकरण की जो प्रतिभा है वह प्रदान की है। जब माता कौशल्या उस अन्न को अग्नि में तपाती और स्वयं पिण्ड बना कर और अग्नि में तपा करके उसको पुन: जब पान किया जाता है तो उसका पुन: मुखविन्दु में भी खरल होता है और जब उसे पान किया जाता है, उसके रसों से भी मानव के शरीर में रेतस् उत्पन्न होता है। और वही कहीं वीर्यत्व के रूप में है, कहीं रजत्व के रूप में है। अरे उसी का पुन: से शरीर रूपी पिण्ड बना। इसी में बुद्धि है, इसी पिण्ड में सर्वत्र ब्रह्माण्ड निहित रहता है।

तो आओ बेटा, विचार यह चल रहा था कि यह चन्द्रमा मानो गौतम है। यह रात्रि को अपने में प्रकाश में लाने वाला है। तो मैं उच्चारण कर रहा था कि शिव अपनें में चन्द्रमा के रूप में अपनी साधना के द्वारा अपने चन्द्राकार

वाले चन्द्रमा को दृष्टिपात करते रहे और चन्द्रमा का जहां जहां समन्वय जिन लोक लोकान्तरों से रहता है वह समाधिष्ट होकर के उन्हीं लोक लोकान्तरों का दर्शन करते रहे हैं। उन्होंने उनको बाह्य जगत में भी लाने का प्रयास किया। तो विचार विनिमय यह कि शिव उसे कहा जाता है जो राष्ट्र में तपस्वी हो और तपस्या करने वाला हो।

जब राजा स्वत: तपस्वी बनता है, याज्ञिक बनता है, प्राण की आभा में रत होता हुआ ब्रह्मज्ञानी होता है तो राजा के राष्ट्र में राष्ट्रीय प्रणाली बिखर नहीं पाती। राष्ट्रीय प्रणाली बिखरती उस काल में है, जब कि राजा तपस्वी नहीं होता। तो इसलिए तपस्या करनी चाहिए। माता को और राजा को स्वत: तपस्वी बनना चाहिए। यदि राष्ट्र और समाज को उन्नत बनाना है तो राजा के यहां विज्ञान होना चाहिए, राजा को स्वत: वैज्ञानिक होना चाहिए जो विज्ञान का अपना निर्णय लेने वाला हो। ऐसा नहीं कि वैज्ञानिक भिन्न है और राजा भिन्न रहता है। राजा को विज्ञावेता बनना चाहिए। विज्ञानवेता उसे कहते हैं जो चन्द्रमा में जो विज्ञान है अथवा उसे जानने के लिए सदैव तत्पर रहे। जो चन्द्रमा के विज्ञान में रत रहता है कि चन्द्रमा से हमें क्या क्या प्राप्त होता रहता है ?

बेटा, मुझे स्मरण आता रहता है महाराजा शिव के यहां दो ऊर्ज्वा क्रिया कलाप होते रहे। एक तो सूर्य की ऊर्जा से यन्त्र अन्तरिक्ष में गति करते रहे और एक चन्द्रमा में जो शीतलता है उससे शीतल यन्त्रों का निर्माण होता रहा। जो कान्ति अथवा जो किरणें सूर्य से चलकर चन्द्रमा से समन्वय करती हैं, उन किरणों को यदि हम जान लेते हैं और चन्द्रमा के माध्यम से जानते हैं तो उन परमाणुओं को एकत्रित करने वाला जो विज्ञान वेता होता है उन परमाणुओं को एकत्रित करके उन्हें जब यन्त्रों में भरण कर लेता है और यन्त्रों में भरण करने मात्र से ही यन्त्रों का निर्माण करने वाला अग्नियास्त्र को जब उसका प्रादुर्भाव करता है अथवा उसको त्यागता है अग्नि में, अग्नि के स्वरूप में ब्रह्माण्ड के इस राष्ट्र को बनाना चाहता है। वह चन्द्र यन्त्र का उसके पीछे जब गमन कर देता है तो वह अग्नियास्त्र उसी से नष्ट हो जाता है। तब शान्ति स्थापित हो जाती है। वह अग्नि के परमाणुओं को निगल जाता है।

अग्नि के परमाणुओं को जैसे सूर्य की जो कान्ति है अथवा सूर्य का ऊर्जा है वह चन्द्रमा से मिलान करता हुआ एकपदा, द्विपदा चतुषपदा इस प्रकार उसे शीतल बना देता है। उसी से ग्रीष्म ऋतु बन जाती है, रात्रि सोम को देने वाली है। उन परमाणुओं को जब वैज्ञानिक अपने में ग्रहण करता है तो वह शीतली यन्त्रों का निर्माण करता है और वह अपने अस्त्रों की अग्नि को अपने में निगल जाता है और निगल करके राष्ट्र को सोममय बना देता है। तो आज मैं इस विज्ञान में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूं। मैं तो यह कह रहा हूं कि राजा को जहां ब्रह्मवेता होनी चाहिए वहां विज्ञानवेता भी होना चाहिए। ब्रह्मवादी वह कहलाता है जो तपस्वी होता है। ब्रह्मज्ञानी राजा वह होता है जो प्रजा को महान बना देता है। एक वह वैज्ञानिकों को शिक्षा देने वाला हो। और राजा यदि विज्ञान को नहीं जानता और वह तपस्वी भी नहीं है तो राजा अपने राष्ट्र में निष्क्रिय सा बन जाता है।

मेरे प्यारे ऋषियो, जो उस (राजा) के यहां एक वृति है उसके द्वारा बलिष्ठता होनी चाहिए और वह "सामां भू वरूणम" देखो शरीर में एक तो बल होना चाहिए। जहां ब्रह्मज्ञानी है, वहां विज्ञानवेता है। जहां विज्ञानवेता है वहां तपो में परिणत हो जाता है। तो विचार आता रहता है बेटा, राजा अपने राष्ट्र को उन्नत बनाता है ब्रह्मज्ञान के द्वारा और वह जब तर्क सिद्धान्त को लेकर के राष्ट्र को उन्नत बनाता है तो राष्ट्र में रूढ़िवाद नहीं होता। क्योंकि ईश्वर के नाम पर जो रूढ़ियां होती हैं वह विज्ञानवेता न होने से और राजा के ब्रह्मज्ञानी न होने से नाना प्रकार की रूढ़ियां ईश्वर के नाम पर बन जाती हैं और वही रूढ़ियां राष्ट्र की घातक होकर, समाज की घातक बन कर एक दूसरे में रक्त की प्यासी बन जाती हैं।

मेरे प्यारे, मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है कि भगवान मनु ने और कालेत्वर ऋषि महाराज ने भी अपनी चर्चाएं की हैं। आज मैं उस संदर्भ में न जाता हुआ देखो शिव राष्ट्र के केवल तीन मन्तव्य रहे हैं कि राजा को तपस्वी बनना चाहिए और समय समय पर राष्ट्र को अपने विचारों से, अपने साकल्य से यागों के द्वारा राष्ट्र और प्रजा को उन्नत और सुंगन्धित बनाना चाहिए। उससे उनके विचारों में जो प्रादुर्भाव अथवा प्रदूषण आ गया है

वह प्रदूषण भी समाप्त हो जाए, तो राष्ट्र उन्नत होता चला जाएगा। तो आज बेटा मैं राष्ट्र के संदर्भ में ले जाना नहीं चाहता हूं। केवल यह कि महाराजा शिव ने चन्द्रमा को जानने का प्रयास किया और चन्द्रमा अपने में बड़ा महान रहा है क्योंकि मानव इन लोक लोकान्तरों से इन मण्डलों की शिक्षा लेता है तो मानो वही राष्ट्र को उन्नत बनाता है। क्योंकि वह अपने में त्यागी होते हैं और कैसे त्यागी हैं ? चन्द्रमा त्याग से सोम कहलाता है, वह गौतम कहलाता है, वह कान्तिवान कहलाता है, वही आवृति कहलाता है, वही प्रतिभा कहलाता है, वही वरभान कहलाता है। तो यह चन्द्रमा के उनके त्यागों के नामकरण है। जैसा जैसा उनमें त्याग है, उसी प्रकार मानव उस से शिक्षा लेता है। जैसे सूर्य है वह पालक है, वह उदयन है, वह आदित्य कहलाता है। तो नाना पर्यायवाची शब्द हैं। तो मानो चन्द्रमा पालक भी कहलाता है, सूर्य भी पालक है। ज़हां पालना के एक एक अणु का वर्णन आता रहा है ,तो इसी प्रकार इन को जान करके यह राष्ट्रीयता की प्रतिभा है। चाहे उससे प्रेरणा लेकर के प्रत्येक मानव को त्यागी और तपस्वी बन करके और सौम्यता से सोम को ही साम्यवाद में परिणत कर देते हैं। तो बेटा, एक दूसरा मानव कर्तव्य का पालन करता है।

जैसे चन्द्रमा अपने कर्तव्य का पालन कर रहा है, सूर्य अपने कर्तव्य का पालन कर रहा है, वायु अपने कर्तव्य का पालन कर रही है इसी प्रकार मानव भी जब कर्तव्यवादी बन जाता है तो उसमें ज्ञान और कर्तव्य की उपलब्धि होकर के सुगन्धि हो जाती है और वही सुगन्धि एकाकीरण में रूढ़िवाद को त्याग करके वह ब्रह्मज्ञान में परिणत हो जाता है। तो विचार विनिमय क्या ? बेटा, राष्ट्र को उन्नत बनाना हो तो राष्ट्र को चाहिए कि वह तपस्या में परिणत हो जाए। तो आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है कि हम अपने में त्याग और तपस्या की वृतियों को लाकर के जिस तरह एक मण्डल दूसरे मण्डल से गुथा हुआ है इसी प्रकार मानव मानव से गुंथा हुआ है और एक आभा में रत रहने वाला जो जगत् है बेटा, यह अपने में अपनेपन को ही जानता रहता है।

मुनिवरो देखो, जब भी रूढ़िवाद आता है अज्ञानता से आता है। जब भी रूढ़िवाद की उपलब्धि होती है राष्ट्रीयता न होने से ही होती है। जब भी ईश्वर के नाम पर रूढ़ियां पनपने लगती हैं तो राजा का ब्रह्मज्ञानी न होना ही यह

राष्ट्र के लिए हानिप्रद होता है। तो इसीलिए आज का विचार कहता है कि राष्ट्र हमारे यहां तपश्चर में रहना चाहिए। आज का विचार विनिमय क्या ? हम परमपिता परमात्मा की आराधाना करते हुए अपने में अपनेपन को विचारते चले जाएं। और हम एकपदा द्विपदा और त्रिवर्धा बन करके तीन गुणों को अपने में धारण करने वाले हों। देखो रजोगुण, तपोगुण, सतोगुण एकोरहे, ज्ञान कर्म उपासना, ओ३म् की तीन मात्राएं यह त्रिवर्धा को अपने में धारण करने वाला भूःर्भुवः स्वः इन सब को जान करके बेटा, अपने में महान बनने का प्रयास करें।

आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का सदैव हम गुणगान गाते रहें। क्योंकि हमारा वह देवत्व कहलाता है, वह हमारा महान कहलाता है। तो विचार क्या, आज मैं तुम्हें गम्भीर रहस्यों में विशेष नहीं ले जा रहा हूं। केवल विचार यह है कि चन्द्रमा हमारा देवता है और चन्द्रमा के द्वारा हम विज्ञान की उपलब्धियां उत्पन्न करें। शीतली प्राणायाम करें और विज्ञानवेता शीलती यन्त्रों का निर्माण करें। इसलिए यन्त्रों का निर्माण भी, विज्ञानवेता होना भी बहुत अनिवार्य है राजा का। राजा का राष्ट्र अन्धकार में न रहे, राजा दूसरों के आश्रित न रहे, इतना उसे ज्ञान होना चाहिए और तपों में और विज्ञान में उसे रहना चाहिए।

तो यह बेटा आज का वाक्य हमारा सम्पन्न होने जा रहा है। आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम अपने में अपनेपन को धारण करते चले जाएं। मेरी प्यारी माताएं क्या है मानव जैसे लोक लोकान्तर अपने कर्तव्यवाद पर स्थित हैं इसी प्रकार मानव को भी अपने कर्तव्य में निहित रहना चाहिए, रूढ़िवाद से पृथक रहना चाहिए, ज्ञान और विज्ञान में रत रहना चाहिए। यह है बेटा, आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन होगा। वेद पाठ।।

ॐ

चन्द्रवंश और सूर्यवंश की व्याख्या

स्थान : लाक्षागृह, वरनावा, मेरठ
दिनांक : १९.२.१९९१

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। आज का हमारा वेद मन्त्र अपने में अपनेपन का गान गा रहा है क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही उस वेदमन्त्र की प्रतिभा में लगा रहा है, जिस से मानव के हृदय में यह प्रेरणा प्राप्त होती रही है कि मेरा जीवन कैसे सुखद हो। क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक मानव यह चिन्तन और मनन करता रहा है कि मेरा जीवन सुखद हो जाए और मैं अपने में सुखद अनुभव करता हुआ संसार का बहुत महान व्यक्तित्व मेरे अन्तर्हृदय में समाहित हो जाए। तो यह प्रत्येक मानव परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा है और विचार विनिमय करता रहा है कि मैं राष्ट्र वेता बनूं तो राष्ट्र महान और पवित्र बने। और यदि मैं योगेश्वर बनूं तो मन विचार और कर्म मेरे अनुकूल होना चाहिए। मैं मानो उसी की आराधना करता रहूं। और यदि मैं विज्ञानवेता बनूं तो विज्ञानवेता बन करके मैं उसके पञ्चीकरण में चला जाऊं और पञ्चीकरण में जो भी त्रिविद्या में जो परमाणु हैं उन्हें मैं एकत्रित करने लगूं और मैं ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ता हुआ अपने में सुखद और आनन्दित हो जाऊं।

बेटा, प्रत्येक मानव के हृदय में भिन्न भिन्न प्रकार की कल्पना रही है। एक मानव यह कह रहा है कि मानव को दार्शनिक बनना चाहिए। अपने में अपनेपन का दर्शन करना ही इसी में मानव को आनन्दत्व की प्राप्ति होगी।एक मानव एकान्त स्थली पर विद्यमान है, वह मानव द्वितीय किसी दार्शनिक के उपदेशों को अथवा उसका चिन्तन किया हुआ जो मार्मिक विचार है वह उसको श्रवण कर रहा है, मनन कर रहा है आनन्द की प्राप्ति के लिए। बेटा, मैं इस से पूर्व काल में उस परमपिता परमात्मा का गुणगान गाते हुए

अरूणाभ की विवेचना कर रह था। क्योंकि एक मानव एक एकान्त स्थली पर विद्यमान है और जलाशय का तट है और वह जलाशय के तट पर विद्यमान हो करके खेचरी मुद्रा में प्राणायाम कर रहा है और प्राणायाम में प्राणों को संचय कर रहा है। परमाणु को उसके साथ गमन करा रहा है और अन्तर्हृदय में मानो उसको भोज बना करके पान कर रहा है। तो यह उसका अपने में एक मानवीय विचार है, वह अपने में गम्भीरता की एक आभा है। तो विचार यही आता है कि प्रत्येक मानव अपने में अनुभव करता हुआ आनन्द की प्राप्ति करना चाह रहा है। एक मानव विद्यालय में विद्यमान है। आचार्य का आसन लेकर के वह ब्रह्मचारियों को अपने उद्‌गार देता है अथवा जो उसने अध्ययन किया है अथवा जो उसने मनन किया है उसको वह उन्हें प्रसारण कर रहा है। और वह ब्रह्मचारियों के अन्तर्हृदय में प्रवेश कर रहा है, इसलिए उन्हें आनन्द की प्राप्ति के लिए वह संसार के प्रत्येक क्रिया कलापों की विवेचना कर रहा है।

बेटा, प्रभु का यह जगत बड़ा विचित्र है। इसके ऊपर मानव अपने में चिन्तन करता हुआ राष्ट्रवाद की चर्चा कर रहा है और राष्ट्रवाद को यह कह रहा है कि राष्ट्र कैसे महान बने और यह राष्ट्र क्या है ? तो बेटा, इसके ऊपर मानव इसलिए अनुभव और विचार विनिमय कर रहा है कि वह आनन्द प्राप्त करना चाहता है और द्वितीय को वह आनन्दित दृष्टिपात करना चाहता है। मेरे प्यारे, सभी का एक ही मन्तव्य है कि वह आनन्द के लिए प्रेरित होना चाहता है और आनन्द को अपने में अनुभव करने के लिए तत्पर है। तो विचार भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। परन्तु इससे पूर्व कालों में हम यह चर्चा कर रहे थे, चन्द्रमा की उपासना और चन्द्रसूक्तों का वर्णन कर रहे थे। आज भी कुछ वेद मन्त्र इस प्रकार के थे जिन में चन्द्र सूत्रों का वर्णन आ रहा था और यह चन्द्रमा कैसे सहायता लेकर अपनी क्रियाओं को क्रिया कलापों को तत्पर हो रहा है।

मेरे पुत्रो ! देखो सृष्टि के प्रारंभ से लेकर के मानवीय समाज भी दो भागों में विभक्त हुआ। एक चन्द्रमा एक सूर्य। एक को चन्द्रवंशी कहते हैं और दूसरे को सूर्यवंशी कहते हैं। तो इस सृष्टि के प्रारम्भ से यह मानवीय विचारों की उनकी मान्यताएं रही हैं। वह ऐसा क्यों रहा है ? क्योंकि रात्री का जो स्वरूप है, वह चन्द्रमा के आधार पर है और दिवस का जो स्वरूप है वह सूर्य

के आधार पर है। तो विचार आता है कि यह जो चन्द्रमा का अमृत है जो मैं इससे पूर्व काल में शिव की चर्चा कर रहा था कि राष्ट्र का एक ध्वज होता है। उसे चन्द्रवंशी अपने में धारण करते रहे हैं और सूर्य का जो ध्वज कहलाता है उसे सूर्यवंशी अपने में धारण कर रहे हैं। तो यह दो प्रकार की मान्यताएं सृष्टि के प्रारम्भ से चली आ रही हैं।

रात्रि का काल, दिवस का काल, दिवस आया, रात्रि आई, रात्रि समाप्त हुई तो दिवस आ गया। दिवस समाप्त हुआ तो रात्रि आ गई परन्तु इसी में जीवन सम्पन्न हो जाता है। और इसी से यह सृष्टि संवत, यह वर्ष भी चला जाता है। तो विचार आता है कि हम सूर्य वंशी बने या चन्द्रवंशी परन्तु दोनों की मान्यताएं अन्तिम चरण में एक ही बन जाती हैं। बेटा, हमें विचार आता है कि सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी दोनों ही अपने में पूर्णत्व को प्राप्त होते रहे हैं। देखो, यह सृष्टि का संवत भी इसी पर आधारित बन जाता है। तो आज मैं बेटा गम्भीर मुद्रा में तुम्हें नहीं ले जा रहा हूं, केवल विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा का यह जो अनूठा जगत है यह कितना अनुपम है, यह कितनी महानता में रत रहा है। क्योंकि मानव जीवन अपने आनन्द और सुखद के लिए नाना प्रकार की कल्पनाएं करता रहा है और उसमें भिन्न भिन्न प्रकार की मान्याताओं का वर्णन होता रहा है।

तो बेटा, आज मैं तुम्हें उस संदर्भ में ले जाना चाहता हूं जहां मानवीयता की एक मान्यता अपने में बड़ी विचित्रत्व को प्राप्त होती रही है। तो आज का हमारा वेद मन्त्र उस महान देव की आभा में लगा हुआ है। हमारे यहां बेटा, यह भगवान राम सूर्यवंश को अपने में धारयामि बनाते रहे हैं और जो हमारे यहां देखो रावण का काल था 'रावन राज्य प्रहे' यह भी अपने में चन्द्रवंशी और शैव मत को स्वीकार करते रहे हैं। तो समाज की मान्यताऐं एक स्वरूप से रहनी चाहिए। मुझे बहुत पुरातन काल हुआ विचार विनिमय होता रहा कि राम को रावण पर विजय करने की क्यों आवश्यकता हुई ? हमारे यहां एक यह प्रसंग बना रहता है। बहुत पुरातन काल में हमारे यह विचार आते रहे और जो उस काल की मान्यता अथवा उस काल की जो धाराएं हैं उसी संगरूप (संदर्भ) में जाने से यह प्रतीत हुआ कि रावण का जो राष्ट्र था, वह नाना

प्रकार के रूढ़ियों में विभक्त हो गया था।

रावण के राष्ट्र में विज्ञान बहुत पूर्णत्व को प्राप्त हो रहा था परन्तु मान्यताओं में भिन्नता थी। राजा रावण के जो पुत्र थे उनकी रूढ़िवाद में मान्यताएं कुछ हैं और रावण की मान्यताएं कुछ रही हैं परन्तु दोनों एक दूसरे में रूढ़िवादी रहे। और वह रूढ़िवाद किसे कहते हैं "सम्भव ब्रह्म कृत्य'' वेद में एक सूत्र आया "सेवाम भू वरणं कृतय देवत्वाम'' मानो उनका रावण का जो पूजा का माध्यम था अथवा मान्यताएं थीं, उन मान्यताओं में नाना प्रकार का भेदन बना। और वह भेदन बन करके यह विचार आता रहा "सम्भवे ब्रह्म व्रत्म'' तो देखो यह विचार जब रूढ़िवाद बन गया और वह रूढ़िवाद्र लंका से बाह्य जगत में चला गया। जब बाह्य राष्ट्रों में भी चला गया तो उसी रूढ़ि के आधार पर मुझे स्मरण है कि भिन्न भिन्न राष्ट्रों में उसका प्रचलन हो गया।

उनकी विचारधारा उनकी मान्यताओं का मानो एक राक्षस प्रणाली का निर्माण हुआ। वह राक्षस अपने में अपने को अपना ही उद्गीत गाने लगे। तो देखो राक्षस एक मान्यताएं थीं। राक्षस कहते हैं जो 'रक्षत अप्रवाह' जो रक्षक हैं, राक्षस कहते हैं जो रक्षक कहलाता है और वह रक्ष धातु से राक्षस बन गया। विचार धाराएं बेटा भिन्न बन गई और भिन्न भिन्न बन जाने के कारण राजा रावण के राष्ट्र में लगभग ५० रूढ़ि बनी और उन रूढ़ियों का प्रादुर्भाव मानव की अज्ञानता से उसका समन्वय रहता है। अज्ञानता से समन्वय रह करके और परमपिता परमात्मा के नाम पर रूढ़ियां बन जाती हैं। जब रूढ़ियां बनी तो रूढ़ियों के बन जाने से क्योंकि राजा रावण का जो विचार था वह शैव मत था। वह शैवय नाम की एक रूढ़ि बनी और मेघनाद भी उसी रूढ़ि में चला गया। वह व्रही नामक एक रूढ़ि बनी और वह व्रही परमपिता परमात्मा को मानने की इच्छा स्वीकार करने लगे। मानो इसी प्रकार भगवान व्रहि (दिब्रहे) और राजा रावण का जो मत था धार्मिक दृष्टि से वह शैव्य मत बन गया। और मत मतान्तर बन करके अज्ञानता में एक दूसरे के विचारों में भिन्नता आ गई। और भिन्नता के कारण एक दूसरे के विचारों में जब ईश्वर के नाम पर भिन्नता आ जाती है तो राष्ट्र रसातल को जाना प्रारम्भ हो जाता हैं, वहां की

मान्यताएं अशुद्ध हो जाती हैं। और परमपिता परमात्मा की यदि एक ही मान्यताएं पूरे समाज की रहती हैं चाहे वह चन्द्रवंशी है, चाहे सूर्यवंश का रमण करने वाला है, जो भी उसकी मान्यताएं हैं, परन्तु धर्म और विचार एक ही रहना चाहिए। जब विचार एक रहता है तो रूढ़ियां नहीं पनपती हैं। तो बेटा, राजा रावण के यहां जब रूढ़ियां पनपने लगीं तो उनसे जो पृथक धर्मज्ञ थे, उनके ऊपर उनकी कुदृष्टि बन गई और हिंसक विचार बन गए।

उन्हीं हिंसक विचारों से एक दूसरे प्राणी को नष्ट करने लगे। राजा रावण के जो पुत्र अहिरावण मानो पाताल पुरी में चले गए अपने राष्ट्र के लिए और वहां उन्हों ने शैव मत का प्रचार किया और उसी को ला करके देखो अज्ञानता का एक मूल बना। राजा रावण के दूसरे पुत्र का नाम नाराणतक था, जो विरहनी वास राज में चले गये और वहां भी उनकी यही मान्यता बनी और मान्यता बन जाने के कारण वह भी रूढ़ि में परिवर्तित हो गया। तो मैं यह कह रहा हूं कि विचार केवल हमारा यहं है कि जो हम उच्चारण करना चाहते हैं वह यह है कि यदि राष्ट्र को ऊंचा बनाना है तो राष्ट्र में नाना प्रकार की रूढ़ियों को समाप्त करना होगा। और वह समाप्त कौन कर सकता है ? वह करता है जो तपस्वी राजा होता है। जैसा कल भी मैं तुम्हें वर्णन कर रहा था कि राजा में तीन प्रकार के गुणधान (तपस्यचर, ब्रह्मवेता, विज्ञानवेता) होने चाहिएं।

राजा सबसे प्रथम ब्रह्मवेता होना चाहिए कि ब्रह्म क्या है ? परमपिता परमात्मा क्या है ? धर्म क्या है ? उसके ऊपर उनका विचार विनिमय होना चाहिए और वह अपने में व्यापक विचार वाला हो। तो राजा जब इस प्रकार के तपों में प्रविष्ट रहेगा, वह तपों में रहेगा तो उसका राष्ट्र स्वतः पवित्र बनेगा। मुझे स्मरण आता रहता है कि मैं भगवान शिव की चर्चा कर रहा था जो हिमालय का वह 'विचाराम भू वरूणम' जो हिमालय की कन्दराओं में तपस्वी रहते और वह तपस्या करते अपने को महादेव की उपाधि से अलंकृत करते रहे और वह महादेव इसलिए कहलाते थे क्योंकि महादेवों का देव जो वह याग है उसे वह करते थे। सुगन्धित अपने जीवन में और अपने आश्रमों में सुगन्धित रहते। तो वह महादेव कहलाते थे। जो सुगन्ध देता है, जो प्रदूषण को समाप्त

करता है, वायुमण्डल में अपनी पवित्र भावना देता है और साकल्य के साथ वेद मन्त्रों से देता है, तो वह प्रदूषण उससे समाप्त हो जाता है। और वह प्रदूषणवृत बन जाता है। तो विचार आता रहता है कि वह महादेव कहलाता है।

तो बेटा, मुझे उनका काल स्मरण आता रहा है। उनका विज्ञान बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। जैसा मैंने तुम्हें कई काल में कहा है। एक समय बेटा वह महाराजा, महर्षि विभाण्डक मुनि के द्वार पर था। विभाण्डक उनके आश्रम के निकट वन में तपस्वी थे। जब महाराज शिव 'अमृतम देखो, वह अव्रत्म व्रहवे कृतम देवा' विभाण्डक के समीप जाते और विभाण्डक से वह कुछ शिक्षायें लेते और वह दोनों भ्रमण करते हुए जब मारकण्डेय जी के द्वार पर जाते तो मारकण्डेय जी बड़े विज्ञानवेता थे। मारकण्डेय ऋषि महाराज ने चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य में आसन बनाया हुआ था परन्तु देखो आकर्षण शक्ति से वह उस विज्ञान में रत रहते जहां वह दोनों विद्यमान हो कर अन्वेषण करते रहते। तो वह नाना प्रकार के स्वरूप में रत होकर के अग्न्याधान करते, विचार देते और विचारों को देकर के कुछ समय उस स्थान पर वास करके पृथ्वी पर आते।

जब पृथ्वी पर उनका आगमन हुआ तो वहां उनके नाना ब्रह्मवेताओं ने कहा प्रभु ! आप क्या कर रहे हैं ? उन्होंने कहा मैं तपस्यचर वन रहा हूं। मैं पृथ्वी और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति की आवृतियों में मैनें एक आश्राम में आसन स्थापित किया है और उसमें वास करता हूं। तो मेरे प्यारे, उनके यहां सुदेक्ष नाम का एक महामुनि थे। उन्हों नें कहा प्रभु ! आप ऐसा क्यों कर रहे हैं। आप एक वेद मन्त्र को लेकर के विचार विनिमय करते रहते हैं, उसी के विज्ञान में रत हो जाते हैं। ऐसा क्यों कर रहे हैं ? उन्होंने (मारकण्डेय ने) कहा, यह हमारा कर्तव्य है। कर्तव्यों को यदि मानव यह कहता है कि ऐसा क्यों कर रहे हो तो यह उसकी अवृति अज्ञानता है। तुम यह प्रश्न करो कि तुम ऐसा कर रहे हो ऐसा करना बहुत प्रिय है। सुदेक्ष ने कहा प्रभु ! मैं ऐसा क्यों कहूं और मुझे निर्णय कराइये जो मैंने प्रश्न किया है। उन्होंने कहा मैं इसलिए कर रहा हूं कि मैं अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाना चाहता हूं। और राष्ट्र में उपदेश देने की आवश्यकता नहीं होती। राष्ट्र में तो क्रियात्मक तपस्या की आवश्यकता होती है। जब राजा स्वतः तपस्वी होता है तो उसके अनुसार वह प्रजा बरतने

लगती है। जैसे माता पिता प्रातःकालीन अपने गृह में याग करते हैं तो बाल्य भी उसी के आधारित हो जाते हैं। और यदि वह आचार्य विद्यालय में शिक्षा अध्ययन कराता है और वह ब्रह्मचारियों को पठन पाठन कराता है, अपने में तपस्वी बना हुआ है, गायत्री छन्दों का पठन पाठन कर रहा है, तो वह क्रियात्मक अपने जीवन को बना रहा है। तो उसमें उनके संरक्षण में रहने वाला जो छात्र धर्म है, वह अपने क्रिया कलापों में रत हो जाता है और वह ब्रह्मचर्सिया (बहनचर्या) भी ऊर्ध्वा में गमन करता हुआ अपने अपने क्रिया कलापों में सदैव तत्पर रह जाता है। जब प्रत्येक मानव अपने अपने कर्तव्य का पालन करने लगता है तो वह राष्ट्र महान बन जाता है।

अश्वमेघ याग का मैंने कई कालों में वर्णन किया और अजामेध यागों का मैंने कई कालो में वर्णन किया। क्योंकि राजा को चाहिए कि समय समय पर वह ब्रह्मवेताओं का एक वृत होना चाहिए, सामूहिक गोष्ठी होनी चाहिए। राजा जनक के यहां और महाराजा अश्वपति के यहां भी इसी प्रकार की सभाएं होती रहीं। उसमें विज्ञानवेता भी, उसमें दार्शनिक भी, आत्मवेता भी, सब विद्यमान रहते और उनके विचारों की जब झड़ियां लगती तो समाज ऊंचा बनता, राजा की मध्यस्थता में। उसी प्रकार का यह समाज बन जाता है। तो समाज को बनाने का नाम ही राष्ट्र है, समाज को सुख देना ही राष्ट्र है और मानम प्रवेह प्रत्म' अपने में सुखी सुख और आनन्द को प्राप्त करने का नाम राष्ट्र कहा जाता है।

तो बेटा मैं विशेष चर्चा तो तुम्हें देने नहीं आया हूं। मैं केवल यह विचार विनिमय देने के लिए आया हूं कि प्रत्येक मानव राष्ट्र को ऊंचा बनाने के लिए प्रेरत हो रहा है, मैं भी प्रेरत रहा हूं परन्तु राष्ट्र को अपने में तपश्चर्या को प्राप्त होना चाहिए। कोई भी क्षेत्र हो, किसी भी क्षेत्र में तुम जब गमन करोगे तो उस क्षेत्र में अवश्यकता है, तपस्या की, महादेव बनने की आकांक्षा रहनी चाहिए। और यह जो ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ियों का प्रादुर्भाव होता है, रूढ़ियां बन जाती हैं अज्ञानता के कारण, वह अज्ञान नष्ट हो जाए तो रूढ़िवाद भी समाप्त हो जाएगा। उसकी रूढ़ि के अव्यवयों में मानव को अज्ञानता नहीं पनपनी चाहिए। तो विचार आता रहता है मैंने बहुत पुरातन

काल में कहा कि राज का राष्ट्र विज्ञानवेताओं का होना चाहिए ओर यहां विज्ञान किसे कहते हैं ? बेटा, **विज्ञान कहते हैं मनन और चिन्तन को, विज्ञान कहते हैं जो मनन किया है उसका साकार रूप बनाना है** और साकार रूप कैसे बनता है ?

मुनिवरो मुझे वह काल स्मरण आता रहता है एक समय राजा अश्वपति के यहां यह विचार आया, गुरूओं के द्वारा अध्ययन किया कि राजा को विज्ञानवेता बनना चाहिए। तो विज्ञान वेता कैसे बनता है राजा ? नाना प्रकार के परमाणु और उनका जो उद्गीत गाना है, उस उद्गीत गाने में जो रहस्य है उसे यन्त्रों में निहित करना है। अपने में दृष्टिपात करना है और दृष्टिपात करते हुए विज्ञान की धाराओं में रत रहना है। विश्वविद्यालयों में अपने राष्ट्रों में राजा जब जाता है और विश्वविद्यालय में ब्रह्मचारी विद्यमान हैं, उन्हें राजा कहता है कि मैं भी विज्ञानवेता बनना चाहता हूं मानो चन्द्रमा विज्ञान को जानना चाहता हूं। चन्द्रमा का विज्ञान क्या है ? वह अमृत की वृष्टि करने वाला है। जो राजा इस प्रकार अपने में मनन और चिन्तन करता है वह विज्ञान के वाङमय में प्रवेश करता रहता है।

तो मेरे पुत्रो ! मुझे स्मरण है कि राजा अश्वपति के यहां एक समय भव्य समाज एकत्रित हुआ और उस भव्य समाज में ऋषिवर अपना अपना मन्तव्य और विचार देने के लिए सब उपस्थित हुए। तो महाराजा अश्वपति ने अपने पुरोहित श्रुतिमान केतु मुनि महाराज को वहां पर सभापति नियुक्त किया और सभापति की आज्ञा पा करके अपना अपना उद्गीत गाने लगे। प्रश्न यह था कि राजा अपने राष्ट्र को कैसे उन्नत बना सकता है और कैसे राजा अपने में महापुरुषों की रक्षा कर सकता है ? तो यहां ऋषि मुनियों के विचार प्रारम्भ हुए। इसमें ब्रह्मचारी कवन्धि ने एक वाक्य कहा कि यदि राजा अपने राष्ट्र को उन्नत बनाना चाहता है तो हे महाराजा अश्वपति ! मेरा यह अनुभव है कि तुम्हारा ज्ञान मानो तुम्हें ऊर्ध्वा में ले जाएगा। तुम्हारा सृष्टि का ज्ञान जो नित्यकर्म है उसका व्याख्यान होना चाहिए। उसके ऊपर तुम्हारा आधिपत्य होना चाहिए और प्रातःकाल पति और पत्नी राजा और राजलक्ष्मी दोनों जब ब्रह्म का चिन्तन करते हैं और ब्रह्म का चिन्तन करते करते उसकी छवि बना

लेते हैं तो वह राष्ट्र पवित्र होता है। राजा ने कहा प्रभु ! राष्ट्र में हम दोनों पति और पत्नी विचारों की छवि कैसे बनायें ? उन्होंने कहा देखो रात्रि छाई हुई है और रात्रि के काल में उन्हें अपने में प्रकाश को लाना है तो वहां ज्ञान की आवश्यकता होती है। तो दोनो पति और पत्नी अपनें में जब चिन्तन करते हुए कहते हैं कि प्रभु का कैसा अनूठा राष्ट्र है ? यह चन्द्रमा पूर्णिमा के दिवस में रात्री के अन्धकार को अपने गर्भ में धारण कर रहा है और धारण करता हुआ अपने में वृतियों को प्राप्त हो रहा है।

तो मेरे प्यारे, कवन्धि ने कहा राष्ट्रवाद को यदि महान और पवित्रत्व में ले जाना है तो राजा को चाहिए कि वह प्रातः ब्रह्म की उड़ाने उड़े। वह प्रातः कालीन ब्रह्म याग में प्रवृत हो जाए और ब्रह्मयाग की जो छवि है वह उसका चिन्तन करने के पश्चात अन्तिम चिन्तन का जो चरण होता है वह चिन्तन को एकाग्र करके उसे अपने में हूत करने के लिए तत्पर हो जाए और वह जब उसका हूत करता है तो वह हृदय में समाहित हो जाता है और वह जो मानव का अन्तर्हृदय है उसमें त्रुटियां नहीं रह कर के मानवीयता उस के अपने में धारयामि बन जाती है। और धारयामि बन करके अपने को अपने में दृष्टिपात करने लगता है। गृह ऊंचा बनता है, समाज ऊंचा बनता है और राजा के राष्ट्र में महानता का जन्म होता है। तो विचार आता है कि राजा को अपने जीवन में साकल्य बनाने की प्रवृति होनी चाहिए। जिस साकल्य से मानव याग करता है, जिस साकल्य से मेरा यजमान याग करके अपने अन्तर्हृदय की जो भावना है उनका साकल्य अग्नि की धाराओं में परिणत कर देता है। मानो वह यजमान अपने में सौभाग्यशाली है। तो विचार आता रहता है उसका साकल्य बना करके, चरू बना करके विचारों का जो अन्तर्हृदय में समाहित कर जाए और उसका अन्तर्हृदय पवित्रता को प्राप्त हो जाए, यह साकल्य माना जाता है। यहां कई प्रकार के साकल्यों का निर्माण है। राजा को विज्ञानवेता बनना है तो विज्ञान का साकल्य बनाना होगा। जैसे वायु गति कर रहा है, अग्नि ऊष्ण बना रही है और आपो तरलत्व कहलाता है और पृथ्वी गुरूत्व को लिए हुए रहती है और अन्तरिक्ष जहां वह गमन करते रहते हैं उन्हीं पंचीकरण को ले कर के राजा जब अपने में उन पंचीकरणों का साकल्य बनाता

है और साकल्य बना करके अणु और परमाणु में चला जाता है, यन्त्रों में चला जाता है, यन्त्रों का निर्माण भी उसी से करता है तो वह साकल्य बना करके अपने विश्वविद्यालय में राजा जब प्रवेश करता है तो राजा अपना उपदेश देता है, क्योंकि वह विज्ञानवेता है, ब्रह्मवेता भी है। दोनों प्रकार के साकल्य का जब हूत करता है तो विद्यालय भी पवित्र हो जाते हैं, समाज भी पवित्र हो जाता है। और इन दोनों के पवित्र होने पर देखो राष्ट्र महान पवित्र बन जाता है। तो विचार विनिमय क्या ? मैं विशेष विवेचना में नहीं जाना चाहता हूं। मैं पूर्व काल में बेटा, राजाओं का जो उपदेश होता रहा उन विचारों में तो विशेष नहीं जाऊंगा परन्तु विचार यह चल रहा है कि मैं चन्द्र सूत्रों की चर्चा कर रहा हूं। देखो, चन्द्रमा अमृत को वृष्टि के रूप में परिणत करता रहा है और वह जो अपने में मनन करता है, मनन करता हुआ कहां चला गया मानव।

बेटा देखो, एक समय मेरी प्यारी माता मदालसा का और मैत्रेयी का जीवन मुझे स्मरण आता रहा है। एक समय माता मदालसा भयंकर वन में यह मनन कर रही थी कि यह जो मैंने चन्द्र सूत्रों का पठन पाठन किया है यह चन्द्र सूत्रों में क्या है ? क्या रहस्यात्मक माना गया है ? तो वह अपने में चिन्तन और मनन करती हुई उन्होंने विचारा कि मेरी जो रसना है उसमें नाना प्रकार की नाड़ियां हैं और वह नाड़ियों का एक समूह कहलाता है जो चन्द्रमा के आकार का बना हुआ है और उसमें से नाना प्रकार की तरंगें उपस्थित हो रही हैं। तरंगों का प्रादुर्भाव हो रहा है और वह तरंगें कहां जा रही हैं। "तो वह समाधिष्ट हो करके माता मदालसा यह विचार रही हैं 'चन्द्रम ब्रहवा'' वह जो चन्द्रमा की नाना प्रकार की कान्तियां अथवा वृत्तियां हैं वह कहां जा रही हैं ? तो बेटा देखो, उसका मेरी प्यारी माता अनुभव कर रही है कि वह पुरातत्व नाम की नाड़ी में तरंगें सोम बन कर के जा रही हैं और वह पुरातत्व नाम की नाड़ी से चलकर के वह लघु मस्तिष्क में चन्द्रमा के आकार का एक नृत्य हो रहा है, उसमें वह प्रवेश कर रही हैं और लोरियों से समन्वय हो करके शिशु को गर्भ में माता अमृत और अमृत का साकल्य दे रही है। उससे बेटा, बाल्य ऊर्ध्वा को गमन करते हैं। जब तक हमारा बाल्यकाल माताएं पवित्रता को प्राप्त नहीं कर सकेंगी और इस के लिए गृह गृह में दार्शनिक प्राणी

होने चाहिए। जो मेरी प्यारी माताओं को जीवन के ऊर्ध्वा गति में ले जाने वाले हैं। उसी आधार पर जीवन की धाराएं रहनी चाहिएं। तो माता मदालसा इस प्रकार का अनुभव कर रही थी, अनुभव करते हुए वह चन्द्रमा की नाड़ी जाकर के एक दूसरे में अमृत का आदान प्रदान कर रही है। और अमृत का आदान हो रहा है और अमृत को पान करके वह माता के गर्भ स्थल में जो शिशु पनप रहा है उससे नाड़ियों का समन्वय रहता है। वह साकल्य कहलाता है। इंसी प्रकार राजा के राष्ट्र में भी राजा का भी एक साकल्य है और राजा का साकल्य है कि प्रत्येक इन्दियों के विषयों का साकल्य बनाए और उसे विज्ञान की धाराओं में रत रह कर.के अग्नि की धाराओं को, अग्नि की ऊष्णता को जल में और जल की धाराओं को गुरूत्व में और गुरूत्व की धाराएं अग्नि में तेजोमयी बन करके इस संसार का एक पिण्ड रूप बन जाता है। और उसी पिण्ड रूप में बेटा, नाना प्रकार की नस नाड़ियां देखो अपने में गमन कर रही हैं। तो विचार आता रहता है कि आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है? मैं विचार दे रहा हूं कि देखो माता अपने में यह अनुभव कर रही है।

माता मदालसा जब अनुभव कर रही है तो एक समय यह वाक्य उनके विचार में नहीं आया कि शिशु की नाभी का माता की नाभी से समन्वय कैसे होता है ? क्योंकि जैसे परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का निर्माण किया तो मानो इस पृथ्वी को नाभी कहा है और कहीं कहीं दार्शनिक पुरुषों ने याज्ञिक पुरुषों ने मानो वेद के मन्त्र को लेकर के यह यज्ञशाला को संसार की नाभी कहा है। तो यह कहते हैं कहीं कहीं कि माता की नाभी का जो समन्वय है वह बाल्य की नाभी से होता है और बालय की नाभी का जो समन्वय है वह पंचीकरणत्व में रहता है और पंचीकरण का जो तारतम्य है वह धाराओं से परिणत रहता है और धाराओं का जो जन्म है वह तरंगों से, अणु और परमाणुओं से रहता है। तो मेरे प्यारे, वही तो लघु मस्तिष्क में रमण करते रहते हैं। तो बेटा, मुझे स्मरण है इस प्रकार का विचार विनिमय होता रहा है। तो विचार यह चल रहा है कि "इन्द्रम ब्रह्वा कृतम देवा:'' कहीं निहितज अपने में अभ्युदय होता रहता है चन्द्रमा। विचार आता रहता है कि राष्ट्र में महाराजा अश्वपति के यहां आयार्चजन ऋषिवर ब्रह्मचारी कवन्धि ने इस प्रकार के अपने

विचार दिए, अपना मन्तव्य दिया और उन्होंने कहा यही तो धाराएं है। तो विचार आता है कि यह पृथ्वी संसार की नाभी कैसे है ? मेरे पुत्रो ! मुझे स्मरण आता रहता है परम्परा का विज्ञान। जब भी संसार में विज्ञान और विज्ञानवेता हुए हैं अणु और परमाणुओं को जानने वाले जन रहे हैं। उन्होंने सब से प्रथम इस पृथ्वी को अपनी नाभी बनाया है और पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश किया है। और पृथ्वी के गर्भ में जो धातु पिपाद पनप रहा है और एक दूसरे का आदान प्रदान हो रही है उस प्रबलता में रमण करके पृथ्वी को अपनी नाभी के रूप में वर्णन किया है। यह पृथ्वी नाभी है।

परन्तु आगे यह प्रश्न आता है कि यज्ञशाला को नाभी क्यों कहते हैं ? यज्ञ नाभी क्यों कहलाई गई है ? बेटा, मुझे स्मरण है एक समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से मैत्रेयी ने यह कहा हे प्रभु ! यह पृथ्वी रूपी यज्ञशाला यह नाभी क्यों है ? संसार की नाभी क्यों है ? उन्हों ने कहा देवी ! तुम्हें यह प्रतीत है कि यज्ञशाला का अभिप्राय: क्या है ? यज्ञशाला किसे कहते हैं ? यज्ञ कहते हैं "यजो बरूणम ब्रह्मा क्रतम यज्ञशाला" यज्ञ में जो रमण करने वाला है वह याज्ञिक कहलाता है और यह जो यज्ञशाला का आकार बना हुआ है यह संसार की नाभी है। क्योंकि यज्ञशाला कहते हैं जितना भी संसार के क्रिया कलाप हैं चाहे वह विद्या का अध्ययन कराना है, चाहे वह दार्शनिक बनना है, चाहे वह ब्रह्मवेता बनना है, चाहे राष्ट्रवेता बनना है। किसी भी प्रकार का वेता हो, किसी भी धारा को अपनाने वाला हो परन्तु वह सब याग से ही उत्पन्न होते हैं।

बेटा, देखो याग नाभी है नाभ्याम बनकर जितने शुभ क्रिया कलाप हैं उनका नाम यज्ञशाला है और शुभ क्रियाओं का करने वाला देखो इस पृथ्वी को संसार की नाभी स्वीकार करता हुआ चाहे वह इस पृथ्वी मण्डल पर गमन करने वाला प्राणी हो, चाहे सूर्य मण्डल में हो, चाहे चन्द्रमा में हो, चाहे वह और नाना पृथ्वियों में हो तो वह नाभी कहलाता है। जैसे माता के गर्भस्थल में मानो एक नाभी है और नाभी का नाभी से समन्वय होता है। संसार का जितना भी विज्ञान है, जितनी भी सूतरंगें हैं वह माता की नाभी और बालय की नाभी से समन्वय हो करके तरंगों का प्रादुर्भाव होकर के उससे नाना प्रकार के मस्तिष्कों का निर्माण होता है और वह ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों उसमें रत हो

जाते हैं। तो जैसे पृथ्वी नाभी है इसी प्रकार 'अमृताम' नाभी कहलाने वाला जो नृत्य है, जितना भी संसार का क्रिया कलाप है चाहे वह दार्शनिक हो, चाहे राष्ट्रवेता हो, चाहे ब्रह्मवेता हो, चाहे विज्ञानवेता हो, चाहे वह मृत्युंजय बनने वाला हो, चाहे वह आध्यात्मिक विज्ञान में रत रहने वाला हो उन सब का एक ही मन्तव्य है, वह है नाभी।

मेरे पुत्रो ! यज्ञशाला वह अपने में नाभ्याम बन करके और उससे तरंगों का प्रादुर्भाव होता है, उसी से एकीकरण हो करके वह पिण्ड रूप बन करके पिण्डाकार बन जाता है। तो विचार क्या है हमारा कि हम अपने में अनुसन्धानवेता बनें और इसे नाभी स्वीकार करें कि यह जो यजशाला है यह नाभी है, यह विचारों से केन्द्रित होने वाला एक समूह नाभी कहलाता है। इसी से जगत का निर्माण होता है और इसी से अमृत को प्राप्त किया जाता है। तो विचार विनिमय क्या कि यह जो चन्द्रमा है अपने में नाभी कहलाता है, यह भी नाभी है। क्योंकि यह चन्द्रमा अमृत देता है, शीतलता देता है। पृथ्वी नाभी इसलिए है कि जितने भी विज्ञानवेता हुए हैं चाहे वे पृथ्वी मण्डल पर हुए, चाहे वे चन्द्रमा में हुए, चाहे वे किसी भी लोक लोकान्तरों में क्यों न हुए हों परन्तु उन्होंने पृथ्वी से प्रेरणा ली है। पृथ्वी को नाभी बना करके, पृथ्वी के परमाणुओं को नाभी बना करके उन्हों ने एक दूसरे परमाणु का समावेश करते हुए जैसे यजमान यज्ञशाला में नाना प्रकार का साकल्य देता है और साकल्य देकर के अपने याग को सफल बनाता है। इसी प्रकार यह मानवयीत्व अपने में सफलता को प्राप्त होना चाहता है और "सफलतम ब्रह्मा व्रत्म देवत्वाम" वह नाभी के संगरूप (स्वरूप) को अपने में धारण करना चाहता है। तो बेटा, पृथ्वी नाभी इसलिए है कि संसार के विज्ञानवेताओं ने सबसे प्रथम इसी पर अन्वेषण किया और इन्हीं परमाणुओं को जान करके विज्ञानवेता बने और उस विज्ञान की धाराओं को लेकर के महानता में परिणत होते रहे हैं। तो विचार विनिमय क्या ? बेटा, मैं आज कोई व्याख्याता नहीं होने जा रहा हूं, तुम्हें अपना विचार देने के लिए आया हूं।

विचार केवल हमारा यह "विचारम ब्रह्मा" वृत कि विचार महान और पवित्रता को प्राप्त होना चाहिए। तो बेटा, यह पृथ्वी नाभी है, यह वैज्ञानिकों की

नाभी है। नाना प्रकार के खनिजों का साकल्य बना करके यन्त्रों का निर्माण करता है, विज्ञानवेता बनता है। तो इसीलिए राजा को चाहिए कि जहां वह ब्रह्मज्ञान की उपासना कर रहा है, ब्रह्मज्ञानी बन रहा है और वह नाना प्रकार की रूढ़ियों को समाप्त करना चाहता है। जैसे मैं भगवान राम की चर्चा कर रहा था। राम ने राजा रावण के यहां नाना प्रकार की रूढ़ियों को नष्ट किया और रूढ़ियों को नष्ट करने से विष्णु राष्ट्र की स्थापना होती है। **राम राज्य कोई राष्ट्र नहीं होता देखो विष्णु राष्ट्र कहलाया जाता है,** विष्णु राष्ट्र में ही सर्वत्रता प्राप्त होने लगती है।

विष्णु राष्ट्र उसे कहते हैं जो विष्णु चार प्रकार के नियमों में वद्ध रहता है। उन्हीं नियमों के आधार पर अपने राष्ट्र का निर्माण करता है। जो चार प्रकार वे नियम हैं। वह गदा, पद्म, शंख, चक्र और उसी में वह रत रहता है। **पद्म चरित्र का मूलक है, गदा रक्षा का मूलक है, चक्र संस्कृति का मूलक है और शंख ध्वनि का, वाणी का मूलक कहलाता है।** इस प्रकार के मूलों की चर्चा तो मैं कल प्रकट करूंगा। आज का विचार केवल हमारा यह कि राजा के राष्ट्र में चार प्रकार के मूलक होते हैं तो वह राजा विष्णु बन जाता है। वह विष्णु कहलाता है। और विष्णु के राष्ट्र में ही चार प्रकार की नियमावली का व्यवधान वैदिक साहित्य में आता है। राम राज्य का कोई भी साहित्यक वर्णन किसी भी वैदिकता में वर्णन नहीं आता क्योंकि राम ने ही तो विष्णु राष्ट्र की स्थापना की है। इसी लिए उसको राम राज्य कहते हैं।

इसीलिए राजा को चाहिए कि सूक्रिया कलापों में रत हो करके इन्द्रियों को संयम में बना करके तपश्चकर बन करके आहार और व्यवहार को जो अपनी क्रियात्मकता में लाता है तो बेटा राष्ट्र पवित्र बन जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय मेरे पूज्यपाद गुरूदेव महाराजा अश्वपति के यहां पहुंचे। अश्वपति ने कहा आइए भगवन्! भोग कीजिए। "राजन, ब्रह्मण व्रतम" जब राजा ने इस प्रकार का घोष किया तो ऋषि ने कहा, पूज्यपाद गुरूदेव ने कहा हे राजन! मैं तेरे राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करूंगा क्योंकि राष्ट्र का जो अन्न होता है उससे महापुरुषों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और मैं राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नहीं कर पाऊंगा। देखो ऋषि ने जब ऐसा कहा तो राजा ने

कहा प्रभु ! मैं स्वयं कामधेनु गऊ का दुग्धाहार करता हूं। और स्वतः अपने में मैं और मेरी देवी हम दोनों अपने में यहां कृषक उद्गम करते हैं। उसके बदले जो माता वसुन्धरा अन्न उत्पन्न देती है वसुन्धरा के अन्न से हम उदर की पूर्ति करते हैं और उस अन्न को पान करते हैं। हमें केवल सात्विकता में रमण करना, सात्विकता से रमण करते हुए प्रजा को विचार देते हैं, ब्रह्मज्ञान देते हैं और विद्या का अध्ययन कराते हैं "बामृत्य ब्रह्मा" देखो कृषक का जो अन्न है वह शिक्षालयों में प्राप्त हो जाता है। ऋषि कहता है "समझवम ब्रहे"। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने जब यह श्रवण किया तो राजा ने यह वर्णन किया कि प्रभु! मेरे राष्ट्र में मैं तुम्हारा अतिथि सत्कार करना चाहता हूं और उस अन्न के द्वारा जो मैं मानो अपने में उद्गम करता हूं। उस अन्न को उन्होंने पान कराया। तो इस प्रकार का जो अन्न ऋषि और राजा पान करेंगे तो तपस्वी बनेगी, रूढ़ियों का विनाश होगा।

क्योंकि ईश्वर के नाम पर यह जो रूढ़ियां हैं यह विनाशता को ले जाती हैं। इसलिए रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। यह राजा स्वयं जब तपस्वी बन जाता है तो रूढ़ियां समाप्त होती हैं और यह रूढ़ियां उसी काल में समाप्त होती हैं जब ज्ञानी अपने में ज्ञान का बखान करता है, ब्रह्मज्ञान में परिणत हो जाता है। राजा जनक जैसे के यहां नाना प्रकार के ब्रह्म याग होते रहे हैं। इसी प्रकार मैं तुम्हें राज्यों की चर्चा तो विशेष नहीं केवल यह कि वेद मन्त्रों में इस प्रकार की विचार धाराएं आ जाती हैं राष्ट्र के लिए, समाज के लिए औंर देखो ब्रह्मज्ञान में ही परिणत होना हमारा कर्तव्य है। तो आज का विचार यह कह रहा है कि चन्द्र सूत्रों का पठन पाठन हमारा प्रारम्भ हो रहा था और यह विचार विनिमय हो रहा था कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं।

आज का वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है हमारा कि हम मुनिवरो महादेव बनें और महादेव वह कहलाता है जो 'महा देवत्वम' परम पिता परमात्मा है। राजा महादेव वह कहलाता है जो अपनी प्रजा को महादेवत्व प्रदान करता है और विज्ञान में रत रहने वाला है। और यहां चन्द्र सूक्तों का पठन पाठन प्रारम्भ हो रहा है जैसे देखो चन्द्रमा एक मण्डल है। चन्द्रमा एक

दूसरे से सहायता लेता है और वनस्पतियों को तपाता है। वही वनस्पतियां रुग्णों के क्रिया-कलापों में काम आती हैं और वही औषधियां बन कर के मानव को मानवीयता की आभा में परिणत कर देती हैं। तो प्रत्येक दशा में प्रत्येक लोक लोकान्तरों का जो परस्पर हमारा समन्वय है वह एक दूसरे से समन्वय हो कर के एक दूसरे में रत हो रहा है। आज के हमारे विचारों का अभिप्राय यह बेटा, 'अमृताम ब्रह्मा' मानव को नाना प्रकार के विचारों का एकाकीकरण करते हुए अमृत बनना चाहिए और रूढ़ियों का विनाश और ज्ञान और ब्रह्मज्ञान का प्रसार करना चाहिए, विज्ञानवेता बनना चाहिए। तो आज का विचार सम्पन्न हुआ, अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं हम कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पठन पाठन होगा। वेद पाठ।।

ॐ

समाज में माताओं का सहयोग

स्थान : लाक्षागृह, वरनावा, मेरठ
दिनांक : २०.२.१९९१

जीते रहो।

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस महामना देव की महिमा का गुण गान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा योगी है और "योगाम भू वरूणम" वे योगेश्वर कहलाते हैं, क्योंकि वे योगेश्वरों के स्वामी हैं। इसलिए हमारे वेद मन्त्रों में बहुत समय हो गया है चन्द्र सूत्रों का वर्णन हो रहा है। उसमें एकपदा द्विपदा और चतुषपदा इत्यादियों का वर्णन होता रहा है और उसी वर्णन शैली में प्रायः वेद मन्त्र अपने में गुण गान गा रहा है। और एक एक वेद मन्त्र मानो देवत्व की महिमा में सदैव रत हो रहा है।

तो बेटा, आज हम उस परमपिता परमात्मा जो चन्द्रमसौ है, जो प्रकाश का भी प्रकाश है और रात्री को भी वह प्रकाश का देने वाला है, हम उस परमप्रिता परमात्मा जो हमारा देवत्व है और प्रकाशक कहलाता है उसकी महिमा का गुणगान गा रहे थे। वेद का मन्त्र अपने में बड़ी ऊर्ध्वा में उड़ाने उड़ता रहता है और उन उड़ानों का प्रायः समन्वय रहता है कि हम इतनी ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ते चले जाएं जिससे हमारे जीवन का देवत्व से समन्वय हो जाए और वह जो देवत्व है वही तो हमारा कल्याण करने वाला, कल्याणकारी हैं। तो आज हम चन्द्रमा की उपासना कर रहे थे। हे चन्द्रमसौ ! तू सोम को प्रदान करने वाला है और तू अमावस के पश्चात प्रतिपदा, द्विपदा, चतुष्पदा में रत रहने वाला है।

बेटा देखो, "पंचमय ब्रवहा कृत्य" पृथ्वी के गर्भ में जितना भी खाद्य और

खनिज पदार्थ पनपता रहता है उसको चन्द्रमा अपनी कलाओं से अपने से रस प्रदान करता रहता है। क्योंकि रसों के द्वारा ही संसार में पिण्ड बनता है। जितने भी पिण्ड हैं चाहे वह पृथ्वी मण्डल है, चाहे वह सूर्य मण्डल है, कोई भी मण्डल हो परन्तु उनके सर्वस्व जो पिण्ड बनते हैं वह अमृत से और अमृत आपो से ही बना करते हैं। और इन आपो का ज़ो समन्वय रहता है वह चन्द्रमा से रहता है। तो एक चन्द्रमा नहीं है, बेटा नाना चन्द्रमाओं का वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहता है क्योंकि सूर्य की आभा से यह चन्द्रमा प्रकाशित होता है। जैसे मानव के शरीर में आत्मा का प्रकाश रहता है और मन के ऊपर आता है तो यह जो मनस्तव है यह प्रकृति का समूह है। और सर्वत्र प्रकृति का जो ज्ञान और विज्ञान है वह मन के साथ रहता है। परन्तु इसमें जो प्रकाश आता है वह आत्मा का है और आत्मा का प्रकाश उसी के प्रतिविम्ब से 'मंगलम' यह मन संसार की नाना प्रकार की वृत्तियों को अपने में लाना प्रारम्भ करता है। कहीं यह स्वपन में चला जाता है, कहीं स्वपन में भी गाद से गाद (गाढ़) वार्ताओं में प्रवेश करने लगता है, कहीं और भी गम्भीरता में चला जाता है, परन्तु यह मन का अनुपम प्रकाश है। इसी प्रकार सूर्य के प्रतिविम्ब के द्वारा ही ज़ो चन्द्रमा इसका वृत होता रहता है, प्रकाश आता रहता है और रात्री से इसका समन्वय रहता है। और चन्द्रमा का समन्वय जहां रात्री से रहता है वहां नाना प्रकार की सोमलताओं से भी रहता है और जहां सेमलताओ से रहता है, मन को विज्ञान देता है और मन मानो यह क्या है ? बेटा ! यह प्रकृति के तन्तुओं या आत्मा की वृत्तियों को ला करके प्रकृति को सूक्ष्म रूप में मन का स्वरूप माना करते हैं।

तो बेटा, विचार आता रहता है कि यह मनस्तव ऐसा विचित्र है चाहे इसको विज्ञान में परिणत किया जाए और विज्ञानवेता इसकी आभा में सदैव रहते हैं। तो विचार आता रहता है कि "विज्ञानम भू वरूणम विज्ञानाम देवत्वम मम ब्रह्म मनाः'' तो यह जो मन है इसका समन्वय कहां कहां से रहता है ? यह प्रकृति का जो समूह कहलाता है और विज्ञान की धाराओं में जो रत रहने वाला उसी में रत रहा है। तो विंचारवेता यह कहते हैं कि तुम इस मनस्तव के ऊपर अन्वेषण करो और विचार विनिमय करो। इसी प्रकार चन्द्रमा का

समन्वय मन से रहता है क्योंकि चन्द्रमा शीतल है और चन्द्रमा सोम के देने वाला है, वह सोम कहलाता है। इसी प्रकार वह सोम का समन्वय इस मनस्तव से रहता है यह 'मनो वरुणम ब्रह कृति' कहलाता है, यह मनस्तव कहलाता है। एकपदा, द्विपदा, चतुषपदा और पंचमपदा में और यूं ही छटस सुती में प्रवेश हो जाता है। सप्तम में इसकी आभा का जन्म हो जाता है।

इसी प्रकार देखो यह प्रकृतिवाद है। मन के द्वारा भी इसी प्रकार की कलाएं आती रहती हैं और वह कलाओं में परिणत हो करके विज्ञान की एक आभा में सदैव प्रवेश कर जाता है। तो विचार आता रहता है कि हमारा जो विज्ञान है, हमारी जो विज्ञानमयी धारा है उसके ऊपर हमें प्राय: विचार विनिमय करना है कि हमारा वेद का मन्त्र, वेद की प्रतिभा हमें कौन से मार्ग के लिए प्रेरत करती हैं। तो जब सप्तम मानो इस प्रकार चन्द्रमा अपनी कलाओं से युक्त होता है तो इस कलाओं का समन्वय पृथ्वी से होता है। इसीलिए हमारे यहां मेरी पुत्रियां अथवा "अष्टम ममब्रहे" यह व्रतो को प्राप्त होती रहती हैं। व्रत कहते हैं गति को जानना। यह पृथ्वी की जो गतियां हैं यह चन्द्रमा और सूर्य की आभा को लेकर के अपने में गुरूत्व का जो प्रथम चरण होता है, उसमें रत होकर के यह गतिवान होते हैं। इसीलिए मानव के शरीर में भी जो यह पृथ्वीतत्व प्रधान है इसी में वह गतिवान बन करके इसी में वह रत हो जाता है।

तो बेटा, विचार आता रहता है इसीलिए हमारे यहां आचार्यो ने यह कहा कि सप्तम और अष्टम में मानव को व्रती रहना चाहिए। व्रती का अभिप्राय यह है कि संयम रत रह करके हम अन्नाद को सूक्ष्म पान करें। जिससे हमारे शरीर का ब्रह्माण्ड से जो समन्वय रहता है वह उतना न रह पाए। तो विचारवेता इसमें व्रतों का वर्णन करते हैं। तो उस समय चन्द्रमा की कान्तियों का जो समन्वय है वह पृथ्वी से रहता है और पृथ्वी अपने में गतिवान होती रहती है और इसी प्रकार हमारे यह अष्टम और नवों वृदहा को नवम ब्रह्मे मानव को जानना चाहिए कि नो वृति कहते हैं। जो 'नवम ब्रह्मा कृत्य देवत्वम नमम ब्रहे' नौ पदार्थों की प्रतिभा में रत रहते हैं। हमारे यहां जितनी भी संसार की गणना है वह नौ तक गणना का विधान आया है और वह उसी में मानो रत रहता है। उसके पश्चात उसमें वह किरणों से आभा रमण करती रहती है।

तो विचार आता है गणना का समन्वय देखो नौ तक होता है। इसलिए नौ वृति कहलाती है और नौ ही पदार्थ माने गये हैं। जिनसे यह ब्रह्माण्ड अपने में गति कर रहा है।

तो मेरे प्यारे, चन्द्रमा अपनी आभा में रत रहता है। वह सूर्य से प्रकाश ले करके उसका समन्वय नौ से ले करके और उसका समन्वय अरून्धति मण्डल से होता है। और अरून्धति जो मण्डल है उसका समन्वय मानव की बुद्धि से होता है। बेटा, अरून्धति कहते ही उसे हैं जो बुद्धिमान और देवत्व को धारण कराने वाला हो और वह "ब्रह्मणं ब्रह्मा देवत्वम ब्रहवा:" विचारवेता यह कहते हैं कि गणना के आधार पर मानव अपनी आभा में सदैव रता रहता है, इसको निहारता रहता है, लोक लोकान्तरों को अपने में धारयामि बनाता रहता है। तो इसीलिए इसका जो समन्वय है वह अरून्धति मण्डल से होता है और **अरून्धति मण्डल में बेटा पार्थिवतत्व प्रधान रहता है। वहां मानव अपने में वास करता रहा है।** देखो उनकी तरंगे एक मण्डल से दूसरे मण्डल में प्रवेश होती रहती हैं। इससे विज्ञान अपने में बड़ा सार्थक बन करके अपनी आभाओं में सदैव रत रहा है। तो आज का हमारा वेद मन्त्र यह क्या कह रहा है कि हम चन्द्रमा चन्द्रसूत्रों का जब वर्णन करते हैं तो यह सोममय ही नहीं मानो वरूण कहलाता है तो यह हमारा वरणनीय माना गया है। इसी को हम अपना वरणनीय स्वीकार करते हैं।

मुझे बेटा, वह काल स्मरण आता रहता है जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की जो देवी थी मानो मैत्रीय वह सदैव चन्द्र सूत्रो का वर्णन करती रहती थी। और वह अपने में चन्द्रमा के विज्ञान के ऊपर अन्वेषण करती रही। तो एक समय जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने विद्यालय में से गृह में प्रवेश हुए और मैत्रीय ने पूर्व की भान्ति उनका स्वागत किया और उन्होंने कहा भगवन ! मैं एक अपने में बड़ी वृत्तियों में शान्त होने जा रही हूं, मुझे कोई मार्ग नहीं प्राप्त हो रहा है। ऋषि ने कहा देवी तुम वर्णन करो। देवी ने कहा मैं चन्द्रसूत्रों का वर्णन करती रहती हूं और उनको अपने में निहारती रहती हूं वेद मन्त्र का उदगीत गाते हुए। परन्तु मैं एक वाक्य यह नहीं जान पा रही हूं कि चन्द्रमा का अरून्धति मण्डल से समन्वय रहता है और अरून्धति मण्डल का

समन्वय पृथ्वी से है और पृथ्वी का समन्वय मानव के जीवन से है और वह भी उस काल में जब कि माता के गर्भस्थल में एक शिशु पनप रहा हो। तो मेरे गर्भ में एक शिशु पनप रहा है परन्तु मैं उस शिशु के सम्बन्ध में जानना चाहती हूं कि कौन सी रात्री ऐसी है, कौन सा समय ऐसा है जहां उस शिशु से इन लोक लोकान्तरों का समन्वय होता है ?

महर्षि बोले हे देवी, 'ब्रह्मण ब्रह्म कृत्य' यह जो माता का समन्वय रहता है शिशु से यह हर समय रहता है और अरून्धति मण्डल की धाराएं वशिष्ठ पर जाती हैं और मण्डल की धाराएं इस पृथ्वी पर आती हैं और पृथ्वी की धाराएं चन्द्रमा में जाती हैं और चन्द्रमा सूर्य से समन्वय करता हुआ, ग्रहण करता हुआ प्रातः जब ऊर्ध्वा में गमन करने वाली कार्विन रहती है, उस काल में इन सबका समन्वय एक होता है और वह शिशु से उनका समन्वय रहता है। मैत्रीय ने कहा प्रभु ! मैं अपने गर्भ से उस आत्मा से वार्ता प्रकट करते हुए मैं उससे भी यह प्रश्न करती रही हूं। परन्तु मेरे अन्तर्हृदय की अब तक सन्तुष्टी नहीं हुई है। ऋषि ने कहा हे देवी ! तुम्हारी सन्तुष्टी मानो इस प्रकार होगी कि तुम्हारे जो मस्तिष्क में एक ब्रह्मरन्ध्र में, उस ब्रह्म लघु मस्तिष्क में एक व्रत केतु नाम की नाड़ी है और व्रतकेतु नाडी का समन्वय ब्रह्मरन्ध्र से होता है और उसके पश्चात लघु मस्तिष्क से होता है और लघु मस्तिष्क से होता हुआ वह सोम व्रति मस्तिष्क से उसका समन्वय होता है। और मस्तिष्कों से समन्वय हो कर वहीं मस्तिष्क का निर्माण होता है जिस समय माता के गर्भ स्थल में पंच माह होता है शिशु के वास का। इसीलिए उस में लधु मस्तिष्क और व्रेणकेतु मस्तिष्कों का निर्माण होता रहा है। अरून्धति मण्डल का उससे समन्वय है क्योंकि अरून्धति मण्डल का समन्वय वशिष्ठ से है और वशिष्ठ मण्डल का समन्वय रेणकेतु मण्डल से है और रेणकेतु मण्डल का समन्वय पृथ्वी से है और पृथ्वी का समन्वय चन्द्रमा से मिलन करते हुए उसकी तरंगें लधु मस्तिष्क में प्रवेश कर जाती हैं। वहां मानव का निर्माण और मानवीयता में परिणत जो माताएं मानो पवित्र होती हैं जो यह जानती हैं कि इस प्रकार का भी कोई विज्ञान है तो वह माताएं देखो चिन्तनीय बन जाती हैं। और वह चिन्तनीय बन करके माता 'व्रत अव्रहा' देखो मैत्रीय अपने में अनुसन्धान करती रहती और

मैत्रीय ने अपने आचार्यों से अपने पूज्यपाद गुरूओं से भी यह प्रश्न किया और ऋषि से भी किया, यह प्रश्न उनके पस्तिष्कों में सदैव रमण करता रहा।

तो विचार वेता यह कहते हैं कि माताओं का जो अन्तर्हृदय होता है उस हृदय का समन्वय इस पृथ्वी से गुरूत्व पदार्थ से होता है और स्नेह से होता है, तो वह आपो से होता है। और जो उसका कठोरत्व में होता है तो वह मंगलम देखो अग्नि से होता है। तो इसी प्रकार सब का एक समूह बन करके मानव के मस्तिष्क की आभा का निर्माण होता रहता है। यह परमपिता परमात्मा जो विज्ञानवेता है जो विज्ञानवेत्ता बन करके वैज्ञानिक तथ्यों में रमण करता है उस विज्ञान की अपने में बड़ी वशिष्ठता मानी गई है। तो मैं कोई विशेष विवेचना देने नहीं आया हूं, तुम्हें गम्भीर मुद्रा में भी नहीं ले जा रहा हूं। मैं तुम्हें केवल यह वाक्य प्रकट कर रहा हूं कि वेद का ऋषि अपने में क्या कह रहा है। बेटा, चन्द्रमा का समन्वय कहां कहां होता है ? चन्द्रमा का समन्वय सूर्य से होता है, सूर्य का समन्वय ऊर्जा से होता है और वही ऊर्जा द्यौ से प्राप्त कर लेता है। और द्यौ का समन्वय महावृतियों से होता है। तो इसी प्रकार यह एक दूसरे में गुंथी हुई सी प्रभु की सृष्टि हमें दृष्टिपात आती रहती है।

तो बेटा, आज का हमारा वेद मन्त्र यह क्या उद्‌गीत गा रहा है ? यह विज्ञान में रमण करने के लिए कह रहा है कि हे मानव, तू विज्ञानवेता बन करके और विज्ञान की धाराओं को अपने में धारण कर। तो वेद का मन्त्र अपने में ऊर्ध्वा में गमन करा रहा है। और विचारवेता यह कह रहे हैं कि चन्द्रमा का समन्वय समुद्रों से होता है और समुद्रों का समन्वय जलाशय आपो से रहता है और आपो का समन्वय अपनी अमृता को प्राप्त होता रहता है और वही अमृता बन करके चन्द्रमा उसकी वृष्टि कर देते हैं। और वृष्टि अन्नाद में प्रवेश हो जाती है, वनस्पतियों मे भी प्रवेश होती रहती है। क्योंकि हमारे यहां भिन्न भिन्न प्रकार की औषधियों का वर्णन आता रहा है। माता मैत्रयी मुझे स्मरण है वाल्य काल में जब ऋषि के आश्रम में अध्ययन करती थीं तो ऋषि की आज्ञा पा करके भयंकर वनों में औषधियों के ऊपर उनका नृत्य होता रहा। क्योंकि औषध विज्ञान का अध्ययन मेरी पुत्रियों को विशेष होना चाहिए।

मेरे पुत्रो, परम्परा गतों से मेरी माताओं को उस आयुर्वेद के ऊपर बड़ा ज्ञान रहा है, बड़ा आधिपत्य रहा है। क्योंकि आयुर्वेद को जानने वाली जब माता बन जाती है तो वह अपने गर्भ में बालक का निर्माण औषधियों के रसों से आवृत कर लेती है। विचार आता रहता है उसी से वह उन औषधियों का, चन्द्रमा का समन्वय बेटा शीतलता से रहता है। कोई औषध ऐसी है जो अष्टमी के दिन पृथ्वी में से दूरी कर दी जाती है, कोई ऐसी औषध है जो चतुर्दशी में पृथ्वी से अपने में धारण करते हैं क्योंकि चन्द्रमा से उन औषधियों का समन्वय रहता है। जब माता मैत्रिय के गर्भ में शिशु विद्यमान था.तो वह पन्द्रह दिवस होते हैं शुक्ल पक्ष के और पन्द्रह दिवस होते हैं कृष्ण पक्ष के। तो कुछ औषधियों को कृष्ण पक्ष में ले करके उनका खरल बनाया जाता है और खरल बना करके माता प्रत्येक नो माहों में जो शिशु पनप रहा है वह उसी माह में उसी औषध का अध्ययन करके उसे पान करती रही है। तो कहीं दुग्ध के द्वारा, कहीं आपो के द्वारा, कहीं उसे अपनी रसों आवृतियों के द्वारा और जल के द्वारा उसे पान करती रही हैं। और वह पान करने का परिणाम यह होता है कि माता के गर्भ स्थल से देखो ब्रह्मवेताओं का जन्म हो जाता है। वह ब्रह्मवेता वैसे ही उत्पन्न नहीं होते। मुझे स्मरण आता रहा है कि जब माताओं ने अपने गर्भ से ब्रह्मवेता पुत्रों को जन्म दिया है। तो आज हम जब इन तथ्यों में प्रवेश करते हैं, चन्द्रमा में प्रवेश करते हैं तो यह चन्द्रमा महान क्रान्ति देने वाला है। माता की नाभी के केन्द्र में एक चन्द्रवसु नाम की एक नाड़ी कहलाती है जिसका अष्टमी के चन्द्रमा से समन्वय रहता है। तो मेरी प्यारी माताएं जब यह जानती हैं कि मुझे ब्रह्मचारी को ब्रह्मवेता की शिक्षा देनी है तो अष्टमी के चन्द्रमा की अपनी नाभी केन्द्र से उसका सिञ्चन करती रही हैं और उसका सिञ्चन करके उन कान्तियों के द्वारा और वह नाडियों के द्वारा शिशु की नाड़ियों में वह रस प्रदान करती रही हैं।

तो विचार आता रहता है बेटा वह 'रस: ब्रहवाव्राम' मुझे मैत्रियी का जीवन भली भान्ति स्मरण आ रहा है कि मैत्रेयी सदैव उस माह में अपनी नाभी केन्द्र से चन्द्रमा की आभाओं का सिञ्चन करती रही हैं। यह विद्याएं हमारे यहां वैदिक साहित्य में प्रायः हमें प्राप्त होती रहती हैं। इसीलिए हमें आयुर्वेद का

अध्ययन करते हुए चन्द्रमा से इसका मिलान करना चाहिए। बेटा मैत्रयी ने जब महर्षि से यह कहा कि प्रभु इसका तो मैंने निवारण कर लिया है जो आपके उत्तर से सन्तुष्टी हो गई है परन्तु मुझे एक शंका और है। मेरी अन्तरात्मा में प्रेरणा एक और आई है कि प्रभु मेरे गर्भ स्थल में जो शिशु है इस शिशु का समुद्रों से क्या समन्वय रहता है ? ऋषि ने कहा देवी, यह जो समुद्र है यह आपो है और यह आपो का शिशु से समन्वय रहता है क्योंकि आपो ही शिशु का आसन बना हुआ है और उस आसन पर वह विद्यमान रहता है। उसी आसन में वह ओढन है और उसी में वह रत रहता है। इसीलिए समुद्रों से और समुद्रों का समन्वय आपो से और आपो ही माता के शिशु को, हम जैसे शिशुओं को ऊंचा बनाती रहती है।

तो विचारवेत्ता यह कहते हैं कि इस प्रकार की विद्याएं हमारे वैदिक साहित्य में प्रायः होनी चाहिएं। वह भी प्रायः इस रूप में जब वेद से मन्त्रों को विचारने लगता है तो इस प्रकार की विद्या का जन्म होता है। जब मेरी प्यारी माताएं इस प्रकार का अनुसन्धान और इस प्रकार के अपने पुत्रों को जन्म देने वाली बनती हैं तो उनका हृदय प्रसन्न होता है और वह इसलिए उत्पन्न करती हैं कि जिससे संसार में कुरीति न आ जाए। कुरीतियों का जो मूल है वह कुरीति प्रथम मेरी प्यारी माता है। जब माताएं इतनी शिक्षा गर्भ स्थल में और लोरियों में शिक्षा देती हैं और नैतिकता में परिणत कर देती हैं, अनुशासन की उसमें पुट लगा देती हैं। तो मेरी प्यारी माता सौभाग्य शालिनी बन करके राष्ट्र और समाज को उन्नत बनाती हैं। तो विचार केवल यह कि मेरी प्यारी माताओं के अन्तर्हृदयों में पवित्र विद्या होनी चाहिए और पवित्रता को लेकर के ही मानव अपने में गमन करता रहा है।

मेरे पुत्रो, चन्द्रमा को जानना बहुत अनिवार्य है। चन्द्रमा सोम है, चन्द्रमा रेतस कहलाया गया है। यह रात्री का स्वामी होने से रात्री के अन्धकार को भी प्रकाश में लाने वाला है। इसलिए प्रकाश रहना चाहिए। तो बेटा, प्रत्येक मानव को, प्रत्येक मेरी पुत्री को अपने में अभ्युदय उद्यत रहना चाहिए, अपने में प्रकाश में रहना चाहिए। माता सदैव यह चाहती है कि मेरा बाल्य ब्रह्मवेता बन करके अपनी आभा में परिणत रहे। मानो सर्वत्रता की यह प्रबल इच्छा बनी रहती है।

तो इसीलिए शिक्षाओं से पूर्ति करना यह सब माता का कर्तव्य है। देखो माता मैत्रयी ने जब इस प्रकार का तप किया, इस प्रकार का अनुसन्धान किया, वह एक ऋषित नाम की एक औषध होती है उसे अष्टमी के दिवस पृथ्वी से पृथक किया जाता है और वह गायत्री के सहित उसका निर्माण वृत्त उसको संस्कार दिए जाते हैं। तो उसे अष्टमी के दिवस पान करने से पृथ्वी के विज्ञान को वह शिशु जो माता के गर्भ में है, वह पृथ्वी के अमृत विज्ञान को जानने वाला बन जाता है कि पृथ्वी में कहां कहां कौन सा खाद्य और खनिज पदार्थ विद्यमान रहता है ? माता वसुन्धरा को वह जानता हुआ अपने में अपनेपन का व्यवधान करता रहता है। तो विचार आता रहता है हे मातेश्वरी, पूर्णिमा के दिवस जब तू चन्द्रमा की औषध लेकर के और वह सोमलता जो चन्द्रमा की औषध लेकर के और वह सोमलता यह जो चन्द्रमा की कान्ति में पनपती रहती है, जब पूर्णिमा के दिवस उसे पृथ्वी से दूरी कर दिया जाता है, तो माता उसे खरल बनाती है और खरल बना करके वह अग्नि में तपाए हुए जलाशय आपो के द्वारा उसे पान करती है। तो पृथ्वी का "मंगलम द्रव्य व्रतम" यह आपो में जितना विज्ञान है, आपो में जितनी तरंगें हैं और वह कहां कहां मिलान करती हैं, बेटा वह उसी में अपनेपन को धारण करता हुआ उसी में रत हो जाता है और उसका विज्ञान चन्द्रमा की आभा में रत हो जाता है और चन्द्रमा को वह जान लेता है कि यह चन्द्रमा कितना शीतल है 'हिमन्तं ब्रहे" यह हेमन्त ऋतु में क्या करता है और यह बसन्त ऋतु में क्या क्रिया कलाप करता है ? वह सबको विद्या को शिशु अपनें में माता से लेकर के उसका वाह्य जगत में आकर के अन्वेषन करता है, और चन्द्रमा में जो विज्ञान है उसे जानने लगता है।

मेरे प्यारे, मुझे बहुत सा काल स्मरण है जब शीतली यन्त्रों का निर्माण करने वाला निर्माण करता रहा है, अग्नि में अग्नि को शान्त करने वाले यन्त्रों का निर्माण अग्नि का अभ्युदय (प्रज्वलित) करने का विज्ञान मानव के समीप आता रहता है। मैं बेटा आज माताओं की प्रशंसा नहीं कर रहा हूं। मैं जो वेद में विज्ञान आया है, उसकी चर्चा कर रहा हूं और माताओं ने इसको कितनी क्रियात्मकता में पान किया है इसकी चर्चा कर रहा हूं। देखो माता मैत्रयी के द्वारा नौ माह में औषधियों को पान करते हुए, वह उसी का साकल्यं बना करके

अपने हृदयग्राही औषध को पान करके बेटा माता के गर्भ से जब बाल्य का जन्म हुआ तो जन्म होते ही कुछ समय के पश्चात माता से वार्ता प्रकट करता रहता और माता लोरियों का पान कराके ब्रह्मज्ञान देती। हे बाल्य तू चन्द्रवेता बन, हे बाल्य तू वायुवेता बन, हे बाल्य अग्निवेता बन कर के और महत्त्व की धाराओं को जान करके, तू बिन्दु और बिन्दु से शून्य और यह जो संसार विकासमान है इस को जान।

मेरे प्यारे, यह संसार है क्या ? यह बिन्दु है, शून्य बिन्दु है। यह विकासवाद है जो नाना प्रकार के रूपों में यह लोक लोकान्तरों के रूपों में क्या नाना प्रकार की धाराओं में जो दृष्टिपात आ रहा है, यह उसका विकास है और शून्य बिन्दु में जाना सर्वत्र देखो सिमित करके उसी में प्रवेश हो जाता है। तो विचार क्या ? यदि माताएं इस प्रकार के विज्ञान को और विद्या का अध्ययन करें तो यह संसार महानता को प्राप्त हो जाएगा और महानता उसका मौलिक स्वरूप कहलाया गया है। तो माता मैत्रयी सदैव अपने गर्भ में ही बाल्य को लोरियों का पान कराती हुई, ब्रह्मज्ञान देती रहती। और श्रोत्रों में कहती हे आत्मा, तू अखण्ड रहने वाला है, हे आत्मा तेरा किसी काल में भी ह्रास नहीं होता और जब मैं अन्वेषण करती हूं इसमें चन्द्रमा की शीतलता है और सूर्य की ऊर्जा है, अग्नि की ऊष्णता है और पृथ्वी का गुरुत्व है और जल का आपो है और इसी में अन्तरिक्ष है, अवकाश है, वायु है गति करने वाली तो उसी में वह रत हो रहा है, उसी में अभ्युदय हो रहा है।

बेटा, प्रभु का यह कैसा अनुपम विज्ञान है ? कैसा महान जगत है इसके ऊपर हम प्रायः अन्वेषण करते रहे हैं। विचारवेता अपने में यह विचारता रहा है। तो विचार आता रहता है कि परमपिता परमात्मा जो हमारा देव है हम उसी की उपासना से उसी देवत्व के समीप जाने का प्रयास करें। हमारा विचार यह कि माता मैत्रयी ने अपने गर्भ में शिशु को यह 'प्राण को अपानम ब्रहवे' प्राणों का सिञ्चन करती हुई वह प्राण के द्वारा कहीं सूर्य की तरंगों में प्राण गति कर रहा है, कहीं वह गति वायु की है, अग्नि के परमाणुओं को अपने में सिमट रहा है और सिमिट करके माता उसे शिक्षित बनाती हुई ब्रह्मवेता और विज्ञानवेता बना देती है।

बेटा, मैं इस संदर्भ में अपने विचारों को नहीं ले जा रहा हूं। केवल आज का हमारा विचार यह चल रहा है कि हम चन्द्रमा की उपासना करें क्योंकि हमारे जीवन से चन्द्रमा का विशेष समन्वय होता है क्योंकि यह रात्री को भी अपने में धारण करने लगता है। तो इसका समन्वय सूर्य से रहता है, सूर्य का समन्वय वह लोक लोकान्तरों की दृष्टि से उसका (सूर्य का) समन्वय वृहस्पति से होता है और वृहस्पति का समन्वय स्वाति से होता है और स्वाति का समन्वय ध्रुव से होता है और ध्रुव का समन्वय मूल से होता है और मूल नक्षत्र का जो समन्वय है वह पुष्य नक्षत्र से होता है। इसीलिए पुष्य नक्षत्र में चन्द्रमा की जब कान्ति जाती है तो वहां की तरंगें ले कर के अपने में गमन करता है। जब मूल में जाता है तो मूल की तरंगों को ले करके, परमाणुवाद को लेकर के यह गमन करता है। तो बेटा, मैं प्रभु के विज्ञान में ले जाना नहीं चाहता हूं। इन का सब का समन्वय चन्द्रमा से होता है, चन्द्रमा का समन्वय सोम से होता है और सोम का समन्वय समुद्रों से होता है और समुद्रों का समन्वय आपो से रहता है और आपो ही वह तरलत्व पदार्थ कहलाता है जिसमें वह (बाल्य) गमन करता रहता है।

तो बेटा, देखो मैं लोक लोकान्तरों के ऊपर विचार नहीं देना चाहता हूं। मैं लोकों का कोई विज्ञानवेता भी बनना नहीं चाहता हूं। विचार केवल यह कि हमें आज विचारना यह है कि हम परमपिता परमात्मा के जगत में विद्यमान हैं और परमात्मा के जगत के ऊपर हमारा अन्वेषण होना भी बहुत अनिवार्य कहा जाता है। उस अन्वेषण प्रक्रिया को हम अपने में धारण करते रहें जिससे हमारा जीवन एक महानता में गमन करता रहे तो वही रेतस् है। समुद्रों का समन्वय रेतस् से और चन्द्रा से रहता है जिसमें लोक लोकान्तरों के परमाणु गमन करते रहते हैं। प्राण अपने में प्राणेश्वर कहलाता है। इसकी चर्चाएं मैं कल प्रकट कर सकूंगा। आज का विचार विनिमय यह कि माता मैत्रयी का जीवन बड़ा सार्थक रहा है। माता मैत्रयी के दो सन्तान थीं, दो पुत्र थे जिनको ब्रह्मवेता उन्होनें बनाया, त्याग और तपस्या में परिणत किया।

जैसे मैत्रयी की आभा में रमण करने वाले याज्ञवल्क्य मुनि महाराज भी अपने में तपस्वी थे। वह देवियों को सदैव यह शिक्षा देते रहते कि तुम्हारे गर्भ के विषय में हम विचार तो देते हैं परन्तु तुम्हारे विचार भी बहुत अनिवार्य हैं।

बेटा, मुझे स्मरण आता रहता है कि महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज जब एकान्त स्थली में विद्यमान होते तो वह अपनी वीरत्व अपनी यौगिकता की वार्ता प्रकट करते और यह मैत्रयी से कहते हे मैत्रयी, यह जो योग है यह क्या है ? आत्मा का जो प्रकाश है यह क्या है ? यह आत्मा का प्रकाश ही मानव को प्रकाशित कर रहा है। जो इस प्रकार के पति और पत्नी विचार विनिमय करते हैं तो माता के गर्भ स्थल में जो शिशु विद्यमान होता है वह उनको सबको श्रवण करता है और जब माता के गर्भ से बाह्य जगत में आता है तो उन्हीं संस्कारों के आधार पर अपने क्रिया कलापों को प्रारम्भ कर देता है, और ब्रह्मज्ञान में रत रहता है। जैसे महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की मातेश्वरी सोमवृतिका, इस प्रकार का तप करती रही और वह उसे अपने में धाराओं को ज्ञान और विज्ञान की आभाएं प्रकट करती रहीं और वशिष्ठ के जो पिता थे वह मध्य रात्री के काल के पश्चात लोक लोकान्तरों की उड़ाने उड़ते रहते कि यह अरून्धति मण्डल है। अरून्धति मण्डल का समन्वय स्वाति से है और स्वाति का समन्वय वशिष्ठ से है और वशिष्ठ मण्डल का समन्वय सोमलताओं से है, सोमलताओं का भी एक मण्डल है, और सोमलता मण्डल का समन्वय आपो से रहता है। उसमें लोक लोकान्तरों की धाराओं को वशिष्ठ की मातेश्वरी को उनका पितर वशिष्ठ वर्णन कराता है कि विज्ञान यह कह रहा है। तो माता का जो लघु मस्तिष्क है वह जो रेणकेतू मस्तिष्क है, स्वाति मस्तिष्क है उस में से तरंगें उद्बुद्ध हो करके माता के गर्भ में जो शिशु विद्यमान है उसमें वह प्रवेश होती रहती हैं। उसमें वह गमन करती रहती हैं।

तो मेरे पुत्रो, मैं तुम्हें विशेष चर्चा देने नहीं आया हूं। विचार केवल इतना है माताओं का इस संसार की प्रगति में संसार की प्रतिभा में एक बड़ा महान सहयोग रहता है। इसलिए जब इनका सहयोग नष्ट होने लगता है तो यह मानव समाज देखो रूढ़िवादी बन जाता है और यह रूढ़ियों में परिणत हो जाता है। मैं रूढ़ि की चर्चा कर रहा था कि रूढ़ि जो आती है वह अज्ञान से आती है, ज्ञान में कदापि रूढ़ि नहीं आती और ज्ञान के साथ में जब तपस्वी होता है तो वह रूढ़ि नष्ट हो जाती है। तो विचार विनिमय क्या है ? मानव तू रूढ़िवादी मत बन, तू ज्ञानी बन, विवेकी बन, ज्ञान और विवेक में रमण

करता हुआ तू चन्द्रमा के विज्ञान को जान। यह जो चन्द्रमा है इसका समन्वय कहां कहां रहता है, चन्द्रमा अपनी धाराओं में रमण करता रहा है। यह चन्द्र सूत्रों में बेटा प्रायः ज्ञान और विज्ञान की चर्चाएं आती रहती हैं।

तो बेटा, आज का हमारा विचार क्या कि मेरी प्यारी माताओं को चन्द्रमा की कान्ति के साथ में चन्द्रमा की आभा में प्राणायाम करना चाहिए जिससे उसकी चन्द्रकेतु नाम की जो नाडी है उसका सुषुम्ना से समन्वय होकर के इंगला के साथ में उस की पुट लग कर बेटा मस्तिष्क के ऊर्ध्वा भाग में जो कृत्तिका हैं और वहां से देखो जो ब्रह्मरन्ध्र है उस ब्रह्मरन्ध्र से समन्वय हो करके उसमें वह सब संस्कार मानो संस्कृत हो जाएं, उसी में रत हो जाएं। तो बेटा हमारा विचार यह क्या कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए परमात्मा के विज्ञान को जाने, परमात्मा के विज्ञान को जानकर उसी के आधार पर अपना आहार और व्यवहार बनाएं और वैसी ही हमारी प्राण की तरंगें चलेंगी। तो इसीलिए यह जो मन है इसके ऊपर आत्मा का प्रतिविम्ब आता है "आत्म ब्रह्मे'' यह स्वर्ग जो बोह्य जगत में संसार है इसको यह स्वप्नवत में भी दृष्टिपात कर लेता है और सुषुप्ति में यह शान्त हो जाता है। यह मन बुद्धि चित अहंकार सब शान्त हो जाते हैं। तो जब यह ऊर्ध्वा में गमन करते हैं तो गमन करते हुए मनस्तव जो प्रकाश का दूतक है यदि आत्मा का प्रकाश उसमें नहीं आयेगा और यह प्रकाश को लेकर के नहीं आ सके तो अन्धकार छा जाएगा।

मुनिवरो, इसी प्रकार **यदि हमें आत्मतत्व वेत्ता बनना है तो इस प्रकृति के विज्ञान को जानना बहुत अनिवार्य है।** क्योंकि प्रकृति के विज्ञान को जाने बिना हम उसमें विवेक को कैसे दृष्टिपात करेंगे ? तो उसके पश्चात हम याज्ञिक बन करके, ब्रह्मवेता बन करके, निष्पक्ष होकर के परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को निहारते रहेंगे और निहारना भी चाहिए क्योंकि यह हमारा कर्तव्य है। विचारवेता बड़ी ऊंची उड़ाने उड़ते रहते हैं। इसीलिए इन विचारों को लेकर हमें अपने विचारों में महानता की प्रतिभा का दर्शन करते हुए अपने में महान और पवित्रता की धाराओं में रत रहना चाहिए। तो बेटा आज का हमारा विचार क्या ? देखो यह मन ही है जो चन्द्रलोक में यन्त्रों के

द्वारा यन्त्रित हो जाता है, यह मन की ही धारा है जो ज्ञान सूक्त हो करके नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में गमन करता रहता है, एक एक परमाणु में ब्रह्म का दर्शन करता रहता है। एक एक परमाणु में प्रकृतिवाद की जितनी तरंगें हैं, सब उसमें निहित रहती हैं। इसलिए हमें विचारना है कि मन के समीप पहुंचें और मन से चन्द्रमा का समन्वय है, चन्द्रमा का समन्वय सूर्य से है, सूर्य का समन्वय गन्धर्व मण्डल से है, गन्धर्व मण्डल का समन्वय सौर मण्डलों की एक इकाई में रहने वाला है। और वही इकाई का समन्वय इन्द्र से होता है और इन्द्र का समन्वय प्रजापित से होता है और उसी प्रजा का निर्माण करने के लिए बेटा मानव नाना प्रकार की गतियों में रत रहता है। तो यह है बेटा, आज का वाक्य। प्रथम जब आचार्य कुलों में हम अध्ययन करते थे तो क्रियात्मक कर्म बनाना, क्रियात्मक हमारा उस आभा में रहना यह हमारा कर्तव्य बन गया था।

तो बेटा आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगाण गाते हुए इस संसार से पार होने का प्रयास करें। आज का हमारा वेद मन्त्र यह कहता है कि चन्द्र सूत्रों का पठन पाठन करते हुए मानो इस स्वर्ग आभा का निर्माण होता रहता है। आज का हमारा वाक्य अब यह सम्पन्न होने जा रहा है। कल समय मिलेगा इस से आगे की चर्चाएं प्रकट करेंगे। अब वेदों का पठन पाठन होगा। वेद पाठ।।

ॐ

धर्म का स्वरूप

स्थान : लाक्षागृह, वरनावा, मेरठ
दिनांक : २१.२.१९९१

जीते रहो।

देखो मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में ज्ञान और विज्ञान की विवेचनाएं प्राय: होती रही हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मैं संसार का ज्ञान और विज्ञान वेता बन करके अपने को महान बनाता रहूं। परन्तु यह मानवीयता की धाराएं उनके मनोनीत मस्तिष्क में सदैव निहित रहती हैं। तो हमें यह विचारना चाहिए कि हमारा वेद मन्त्र ज्ञान और विज्ञान की प्राय: उड़ाने उड़ता रहा है और यह विचारता रहा है कि ज्ञान और विज्ञान अपने में महान है। और यह मानव का कर्तव्य है कि अपने ज्ञान और विज्ञान में सदैव निहित रहे।

तो आज का हमारा वेद मन्त्र हमें ज्ञान और विज्ञान की उस महति में रमण करा रहा है, जहां हमारे यहां ऋषि मुनि अपनी स्थलियों में विद्यमान हो करके नाना प्रकार का विचार और उसको नाना रूपों में व्यक्त करते रहे हैं। क्योंकि हमारे यहां एक ही विचार है और उसकी (विचार की) विवेचना देने के नाना प्रकार माने गए है। क्योंकि यह हमें विचारना चाहिए कि हम नाना प्रकार के विचारों को अपने में ही व्यक्त न करते हुए इस संसार की प्रतिभा में रत हो जाएं जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल पदार्थ को जानने के लिए हम तत्पर हो जाएं। क्योंकि ज्ञान और विज्ञान यह मानवीयता की एक मोलिकता मानी गई है। और ज्ञान और विज्ञान के ऊपर प्राय: मानव सृष्टि के प्रारम्भ से और वर्तमान के काल तक अन्वेषण करता रहा है। किसी काल में विज्ञान, भौतिक विज्ञान ऊर्ध्वा में गमन करता रहा है और कहीं किसी काल में

ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में भौतिक विज्ञान और आधात्मिक विज्ञान दोनों निहित रहे हैं। परन्तु जहां आध्यात्मिक विज्ञानवेता भी अपने में ऊर्ध्वा को प्राप्त होते रहे हैं और कोई काल ऐसा रहा है कि जहां भौतिकवाद में जल प्रधान है और किसी काल में विज्ञान में अग्नि प्रधान रही है और किसी काल में पार्थिवत्व अपने में महानता में गमन करता रहा है।

तो बेटा, विचार विनिमय क्या ? विज्ञान के नाना प्रकार हैं, नाना प्रकार की धाराएं हैं, और उन में धर्म दृष्टिपात किया जाता है। मानव उन्हीं विचारों में उन्हीं वृत्तियों में धर्म को दृष्टिपात करना चाहता है। प्रत्येक मानव धर्म और महानता में अपने को ले जाना चाहता है। और यह विवेचना होती रही है कि हमारा धर्म महान बन जाए। परन्तु धर्म एक व्यापक शब्द है, धर्म एक व्यापक क्रिया-कलाप है। धर्म एक मानव का, आत्मा का सौभागयत्व स्वरूप माना गया है। तो विचार आता रहता है, आज मैं धर्म के ऊपर कोई विवेचना नहीं देना चाहता।

बेटा, विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की महति को विचारते हुए, परमपिता परमात्मा की महति का वर्णन करके अपने में महान बनने के लिए सदैव तत्पर रहें जिससे हमारा मौलिक विज्ञान, मौलिक आध्यात्मिकवाद अपने में नृत्य करता रहे और सृष्टि के प्रारम्भ से यह क्रम चला आ रहा है। देखो जहां ऋषि मुनि अपने में विद्यमान हो करके इसके ऊपर अन्वेषण करते रहे, यह विचारते रहे कि एक परमाणु दूसरे से मिलान किया जाता है और परमाणु परमाणु अपने में अपनेपन को विचारता रहा है। तो यह परमाणुओं की मौलिकता मानी गई है।

बेटा, एक अणु है, एक परमाणु है। एक अणु में मानव अपनी मानसिक प्रवृत्ति को तन्मय कर देता है। तो बेटा उसी के गर्भ में परिणत होता हुआ और वह उसी को जानने के लिए तत्पर हो जाता है। तो मैं इस संदर्भ में विशेष विवेचना देने नहीं आया हूं। विचार केवल यह कि हमारा मानवीयत्व और मानव को इतना ऊर्ध्वा में रहना चाहिए जिसके ऊपर सृष्टि के प्रारम्भ से अन्वेषण हो रहा है। क्या राष्ट्र में, क्या यौगिकवाद में, क्या विज्ञान में, क्या परमाणुवाद में

नाना प्रकार की तरंगें अपने अपने धर्म, अपनी अपनी धाराओं को लेकर के ही मानवीयता में गमन करते रहे हैं और उस "मनम ब्रह्मा गते वरूणम" जब गतिवान बन करके ब्रह्माण्ड और पिण्ड को मापने का ऋषि मुनियों ने प्रयास किया है और इसको एक दूसरे में समावेश करने के लिए वे सदैव तत्पर रहे हैं। परन्तु धर्म को वह मानव अपने में जानने वाला बनता है जो भौतिक विज्ञान में रत होकर के आध्यात्मिक विज्ञान की जब पुट लगती है तो मानव धर्म की प्रतिभा को जान पाता है। तो विचार आता रहता है कि धर्म मानवीयत्व कहलाता है। हम परमपिता परमात्मा की आनन्दमयी स्रोत्रमयी गाथा जानने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। तो मुनिवरो, इस संदर्भ में विशेष विवेचना न देता हुआ केवल यह कि हमारे यहां प्राय: नाना प्रकार का विचार विनिमय होता रहा है।

बेटा, हमारे यहां चन्द्र सूत्रों का वर्णन आ रहा है। मैं कई समय से चन्द्रमा के ऊपर विचार दे रहा हूं मानो यह चन्द्र सूत्र कितना विशाल है। जैसे सूर्य सूत्रों का वर्णन आता रहा है। यह जो सूत्र,वाद है, इसे हम चन्द्रमा सूत्रम गर्भेय: जो रात्री को भी गर्भ में धारण करता है वह अपने में चन्द्रवृति कहलाता है। तो विचार आता रहता है पूर्णिमा का जब चन्द्रमा होता है तो यह षोड़ष कलाओं से युक्त होता है। मानो षोडष कलाएं इसमें होती हैं। उन कलाओं में पूर्णिमा का जो दिवस है वह कलाओं से युक्त हो जाता है और सम्पन्न कलाओं से युक्त होकर के प्रकाश में रत रहता है। बेटा, मैंने तुम्हें कई काल में कहा है कि चन्द्रमा की रात्री है और पूर्णिमा का दिवस है। और पूर्णिमा की रात्री में ऋषि मुनि उस सोमरस का पान करते रहे हैं जिस सोम को पान करने से मानव अपने में धन्य हो जाता है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है देखो जब ब्रह्मचारी वृतिका महर्षि विभामण्डक मुनि महाराज के आश्रम में अध्ययन करते रहे। तो महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज और वृतिका ब्रह्मचारी एक समय पूर्णिमा की रात्री के आंगन में विद्यमान होकर कुछ विचार विनिमय कर रहे थे। वृतिका ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु ! यह चन्द्रमा तो अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त होता रहा है। तो उस समय महर्षि ने यह कहा कि यह जो चन्द्रमा का प्रकाश है यह कोई प्रकाश नहीं कहलाता परन्तु जो मानव की आत्मा का प्रकाश माना गया है।

जब मानव आत्म वेता बन जाता है और आत्मा के प्रकाश को दृष्टिपात करता रहता है तो चन्द्रमा का प्रकाश न होने के तुल्य बन जाता है। तो विचारने से प्रतीत होता है कि वह प्रकाश कौन सा है जो इतना अद्वितीय है। देखो, यह चन्द्रमा तो सूर्य से प्रकाशित होता रहता है, सूर्य से ही ऊर्जा को प्राप्त करता है। परन्तु वह जो अनुपम प्रकाश है जो आत्मा का प्रकाश है जिसको योगीजन अपने में ध्यानावस्थित हो करके और उस प्रकाश को अपने में धारण करते रहे हैं। जैसे आत्म प्रकाश है। वह सहस्त्रों चन्द्रमा और सहस्त्रों सूर्य भी इसके समीप आ जाएं तो उसकी आत्मा के प्रकाश से तुलना नहीं कर पाते। इसीलिए वेद का मन्त्र कहता है, आचार्यजन कहते हैं कि हमें आत्मा के प्रकाश को जानना है और आत्मा के प्रकाश को कैसे जाना जा सकता है ? देखो चन्द्रमा का प्रकाश आ रहा है और पूर्णिमा का दिवस है तो यह मानव के मौलिकतत्वों का प्रकाश हमारे समीप आ रहा हैं और वह मौलिकता हमारे अन्तर्हृदयों में विद्यमान है। यह विज्ञान का एक प्रतीक माना गया है और प्रत्येक मानव विज्ञान के रहस्य में जाना चाहता है। और वह जो विज्ञान का रहस्य मानो विकृति है वही तो मानव को पवित्रता की वेदी पर ले जाती है।

तो मेरे प्यारे, विचार आता रहता है कि हम परमपिता परमात्मा की महति में सदैव रत होते हुए उस महान प्रकाश में रत हो जाएं जिस प्रकाश के लिए मानव परम्परा से विश्लेषण करता रहा है। कोई आत्मवेता बन गया है, कोई ब्रह्मवेता बना है "मानव कृत्म देवत्वम" उसी में वह रत रहा है परन्तु आत्मा का प्रकाश एक अनुपम है, आत्मा का प्रकाश जब पंच महाभूतों का जो रहस्य सुगठित विचार है, उसमें जो परमाणु और विज्ञान की वृत्तियां आती रहती हैं उनको जब तक नहीं जाना जाता तब तक हम आत्मवेता नहीं बन पाते। तो जब विभाण्डक ऋषि ने वृतिका ब्रह्मचारी को यह कहा तो वृतिका ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु ! यह जो पूर्णिमा का चन्द्रमा है यह भी तो अपने में पूर्णत्व कहलाता है। ऋषि ने कहा यह भौतिकवाद में आता है। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश है मानो यह प्रकाश कहलाता है। तपस्या जब तपस्वी में मानो है तो मानो यह प्रकाश उसमें लुप्त हो जाता है, उसी में ऐसी प्रतिक्रियाओं में रत हो जाता है। तो इसीलिए यह प्रकाश का प्रकाशत्व नहीं कहलाता। बेटा, विचार आता रहता

है कि पूर्णिमा का जो चन्द्रमा है यह अपने में अद्वितीय है परन्तु आत्मा के प्रकाश में क्योंकि मानव जब आत्मा के प्रकाश का साक्षात्कार करता है जब कि वह इन मंचमहाभूतों के स्वरूप को जान लेता है और इसके स्वरूप को जान करके, इसकी आभा को जान करके मानव अपने में ही अद्वितीय बन करके इस संसार सागर से पार होने के लिए सदैव तत्पर रहता है। तो बेटा, आज का विचार, आज का वेद का मन्त्र हमें क्या कह रहा है "चन्द्रमसौ वरूणं ब्रह्मा आत्मां भू वरूणम ब्रहवे:" आत्मा का प्रकाश अद्वितीय है, इसलिए आत्मा को ही चन्द्रमसौ कहते हैं। यह आत्मा ही चन्द्रमा के स्वरूप में विद्यमान रहती है। तो आज विशेष विवेचना में मैं तुम्हें नहीं ले जा रहा हूं।

बेटा, विचार केवल यह कि हम आध्यात्मिक विज्ञान में रत हो जाएं। हम मृत्यु और अन्धकार से दूर हो जाएं। प्रत्येक मानव का यही लक्ष्य रहता है। राजा जब राष्ट्रीयता को ऊंचा बनाता है तो उसके मन में भी भावना यही होती है कि हमारा राष्ट्र पवित्र बन जाए और हमारा राष्ट्र ऐसे बन जाए जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा है। वह प्रकाश ही प्रकाश देता रहता है। जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा के समय सूर्य देखो रात्री के चन्द्रमा को प्रदान करता है और चन्द्रमा रात्री को मानो पूर्णिमा के दिवस यह सूर्य को प्रदान कर देता है। तो मुनिवरो वह दिवस रात्रि नहीं रह पाती। यह चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य में रत हो जाता है और सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा में रत हो करके रात्री इन के गर्भ में लुप्त हो जाती है। तो परिणाम यह होता है कि प्रकाश ही प्रकाश रहता है। तो ऐसा ही प्रकाश हम सदैव अपने अन्तर्हृदय में चाहते हैं। अन्तरात्मा में इसी प्रकाश के लिए लालायित रहते हैं क्योंकि वह हमारे अन्तर्हृदयों में विद्यमान रहता है और वह जाना जब जाता है जब प्रकृति का जो मण्डल है चाहे वह चन्द्रमा में है, चाहे वह सूर्य में है स्वयं की जो वृतियां हैं वह पंच महाभूतों तक ही रहती हैं। तो पंचमहाभूतों को हम जानने लगें और जानकर के आध्यात्मिकवाद के गर्भ में हम प्रवेश हो जाएं।

तो मेरे पुत्रो, हमारा विचार यह कहता है, हमारा वेद का मन्त्र यह कहता है कि हमें उस देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इन पंच महाभूतों के महत्व को जाने। क्योंकि पंच महाभूतों में धर्म रहता है "धर्मनाय ब्रह्मा व्रतम

देवत्वाय'' धर्म कहां है ? प्रत्येक इन्द्रियों में धर्म समाहित रहता है। प्रत्येक इन्द्रियां धर्म मर्मति कहलाती है। तो विचार आता रहता है कि इन्द्रियों के विषयों को जाने और जानते जानते बहुत दूरी चले जाएं। हम मानो चर्म सीमा पर चले जाएं जहां नेत्र अपना क्रिया कलाप त्याग देते हैं। त्वचा अपने प्रेम को त्याग देती है। जहां श्रोत्र शब्द को त्याग देते हैं, जहां घ्राण अपनी सुगन्ध को त्याग देती है और पृथ्वी की सुगन्ध को घ्राण शक्ति त्याग देती है और रसना रसों को त्याग देती है। जहां उसकी चरम सीमा चली जाती है बेटा, वहां "धर्म ब्रह्मणं ब्रमहे:'' वह धर्मस्य कहलाया जाता है।

बेटा, तो विचार आता रहता है कि उससे ऊर्ध्वा में विवेक बन जाता है और मानव व्यष्टि से समष्टि में चला जाता है। समष्टि का नाम धर्म है और व्यष्टि का नाम समान्यता मानी जाती है। तो विचार आता रहता है कि समष्टि विज्ञान में प्रवेश होना है, समष्टि में जाना है और जब भी मानव समष्टि में चला जाता है वह उसका धर्म और उसकी मानवीयत बन जाती है। जैसे एक मानव नाना प्रकार के रूपों को दृष्टिपात कर रहा है। उन रूपों के रहस्यों को यदि जाना जाए कि इसके गर्भ में क्या है, सुन्दरता के गर्भ में क्या है, इस अग्नि के गर्भ में क्या है जो सुन्दरता अपने स्वरूप को धारण कराती रहती है। तो इसके जानने का नाम, इसके ऊपर अन्वेषण करने का नाम ही धर्म माना गया है।

आज बेटा, मैं धर्म के ऊपर विशेष चर्चा नहीं करूंगा। केवल विचार विनिमय यह कि हमारी प्रत्येक इन्द्रियों में धर्म है और इन्द्रियों को जानना ही संसार को जानना है। और मन को जानना, प्रकृति के मण्डल को जानना है। और यह जो प्रकृति का मण्डल ब्रह्मसूत्र में पिरो दिया जाता है तो ब्रह्म को जानना है। और ब्रह्म को जानकर के हमारा जो अन्तरात्मा है, अन्तरात्मा जो अन्तर्हृदय में विद्यमान है वह परमपिता परमात्मा भी वहीं विद्यमान है, दोनों का मिलन होना प्रारम्भ हो जाता है। तो विचार क्या ? हम उस देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम धर्मज्ञ बनते चले जाएं और धर्मज्ञ बनकर के ही सागर से पार हो जाएं। परन्तु धर्म है कहां ? धर्म मानव की प्रत्येक इन्द्रियों में समाहित रहता है, और प्रत्येक इन्द्रियों के रहस्यों को जानना ही उनका साकल्य बनाना और साकल्य बना करके उसको हृदय रूपी जो यज्ञशाला है

उसमें हर जितनी जो ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त होती है उसमें हूत करने का नाम महात्म्य कहलाया जाता है।

अन्त:करणीय जो याग होते हैं उनमें प्राय: इस प्रकार की प्रतिभा का हमें दर्शन होता रहता है। यह मानवीय दर्शन है जिसके ऊपर हमें अन्वेषण और चिन्तन और मनन करने के लिए हम सदैव तत्पर रहते हैं। तो मैं विशेषता में नहीं, केवल विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा को सदैव जानने वाले बनें। और धर्मज्ञ मानव का 'धर्मब्रहे' उस परमपिता परमात्मा को जानना और परमपिता परमात्मा को सूक्ष्मतम में सूक्ष्म दृष्टि से अपने में पान करने का नाम ईश्वरीय नृत्य कहा जाता है। तो विचार क्या ? जब प्रकृति का क्रियात्मक रूप मानव के क्रिया कलापों में रत हो जाता है तो उस से मानव महान बनता है। जब राजा अपने राष्ट्र में प्रकृति के स्वरूप में सदैव रत हो जाता है और स्वरूप का वर्णन करता है तो वह राजा प्रकृतिवाद में प्रवेश करता हुआ आध्यात्मिकता की ओर जाता है। तो उसमें प्रक्रिया होने लगती है जिससे वह राजा अपने राष्ट्र में विज्ञान का सदुपयोग करता रहे। और विज्ञान के दुरुपयोग होने से मानवीयता का ह्रास हो जाता है।

इसलिए बेटा, विज्ञानवेत्ताओं को चाहिए कि परमात्मा के राष्ट्र में विज्ञानवेता बने रहें। मुझे वैज्ञानिकों की चर्चाएं स्मरण आती रहती हैं। जिन वैज्ञानिकों ने अपनी सात्विक प्रवृति को, वेद मन्त्रों की धाराओं में विद्यमान करा करके, अग्नि की धाराओं पर विद्यमान करा कर वह द्यौ में दृष्टिपात की गई। द्यौ में शब्द जा रहा है अथवा ध्वनियां जा रही हैं और वे जो ध्वनियां जा रही हैं तो अग्नि की धाराओं पर मानो उनका वैज्ञानिकजन दर्शन कर रहे हैं और दर्शन करके वैज्ञानिकजन इसी में रत होते रहे हैं। तो विचारवेत्ताओं ने यह कहा है कि "विज्ञानाम देवत्वम् ब्रह्मे: लोकाम" यह जो विज्ञानवेता हैं यह सृष्टि के प्रारम्भ से अन्वेषण करते रहे हैं। मैं ने तुम्हें कई कालों में प्रकट करते हुए कहा कि महर्षि भारद्वाज और महर्षि विश्वामित्र भी अपने में बड़े विज्ञानवेता थे। विज्ञानवेता एक एक इन्द्रिय के रहस्यों को जान करके विज्ञान की उपलब्धियों में वह सदैव निहित रहे हैं।

तो बेटा, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब ऋषि मुनि अपने में

अन्वेषण करते रहे हैं और वेदों का उद्घोष करते रहे हैं और वेद मन्त्रों के विज्ञान में रत रह करके विज्ञानवेता बन करके विज्ञान की धाराओं में वह अपने मनोनीत हृदय को ले गए हैं। तो विचार आता रहा है कि महर्षि शिकामकेतू उद्दालक के यहां भी इसी प्रकार का विज्ञान रहा है। जब विश्मामित्र विज्ञानवेता बन करके धनुर्याग करते थे तो धनुर्यागों का अभिप्राय ही विज्ञानवेता बनना है। वाजपेयी याग करने का नाम ही विज्ञानवेता बनना है। क्योंकि वाजपेयी याग उसे कहते हैं जहां नाना प्रकार की अग्नि की धाराओं का और जलाशयों का वर्णन आता रहता है। वाजपेयी याग उसे कहते हैं जहां पाण्डित्य जिसे हम पुरोहित कहते हैं वह पुरोहित विद्यमान हो करके पराविधा को देता रहा है। और वह "अग्नय ब्रह्मणा व्रतम" अग्नि का, सोम याग का और वाजपेयी यागों का वर्णन होता रहा है।

तो मेरे पुत्रो, मैं यागों की विशेषता में नहीं, केवल विचार यह है कि हमारे यहां नाना प्रकार के विज्ञानवेता हुए हैं। ऐसे ऐसे महान विज्ञानवेता जिन वैज्ञानिकों का अपने में अपना बड़ा महत्व रहा है। अपने में वह बड़ी ऊर्ध्वा में गमन करता रहा है। मुझे स्मरण आता रहता है भारद्वाज मुनि का जीवन। जब भारद्वाज मुनि महाराज महर्षि विश्वामित्र के यहां पहुंचते तो वह नाना प्रकार के अपने उद्गार देते और वह प्रत्येक पृथ्वी की सुगन्ध और पृथ्वी के परमाणुओं को सुगन्धित करके उसके परमाणुओं को लेते। जल के परमाणुओं को जल में से लेते, सुगन्ध को अपने में अनुभव करते, घ्राण के द्वारा। उसके परमाणुओं को अपने में एकत्रित करते रहे और अग्नि के तेजोमयी परमाणुओं की ध्वनि से वह ध्वनित होते रहे। तो मुझे वह काल स्मरण आता रहा है जब महर्षि तत्वमुनि महाराज के यहां नाना ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे और वह अध्ययन कराते विज्ञान की शिक्षा देते और विज्ञान के नृत्य में ले जाते।

मेरे प्यारे ! हमारे यहां विद्यालय का अभिप्राय यह होता है कि आचार्यों के सरंक्षण में रहना। जहां शारीरिक और भौतिक दोनों प्रकार की शिक्षाओं का प्रावधान होता है। शारीरिक और भौतिक दोनों को लेकर के आध्यात्मिक उन्नति करना, यह ब्रह्मचर्य आश्रम में ही और देखो यह अपने में अपनेपन का अवधान करना रहा है। तो विचार आता रहता है बेटा, मुझे वह काल स्मरण है जब

महर्षि विश्वामित्र के यहां, राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ये सब विद्याओं का अध्ययन करते थे। वे विद्यायों का अध्ययन करते हुए कहीं परमाणुवाद में चले जाते थे, कहीं अनुवाद में रत रहते थे। सर्वत्र विज्ञान की शिक्षा को प्राय: वे प्राप्त करते रहते थे। मुझे एक समय में यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मचारियों के एक वर्ष के पश्चात उनकी परीक्षाओं का उनका एक वृत्म दीक्षान्त विचार विनिमय होता रहता। परीक्षा का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक वर्ष की शिक्षा ब्रह्मचारी की आचार्यों के मध्य में उन्हें प्राप्त होती रही है। उनके जो क्रिया कलाप हैं उनकी जो धाराएं हैं, वह बड़ी विचित्रता में सदैव रत रहीं।

एक समय बेटा जब, दीक्षान्त उपदेश पर महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां से ब्रह्मचारी कवन्धी, ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारी रोहणिकेतु यह सर्वत्र महर्षि विश्दामित्र के आश्रम में पधारे तो उन्होंने उनको आसन दिया और आतिथ्य किया। आतिथ्य करने के पश्चात नाना ब्रह्मचारियों ने नतमस्तक हो करके उनके चरणों का स्वागत किया। महर्षि विश्वामित्र ने कहा, कहो ऋषिवर आपके भव्य उपदेश और आपके क्रिया कलाप के हम सदैव उत्सुक बने रहते हैं। तो महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां विशाल से विशाल मन्त्र थे और विशाल से विशाल वह उड़ाने ज्ञान और विज्ञान की उड़ते रहते। तब उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारियो, तुम्हारा जो अन्तिम चरण है यह आध्यात्मिकवाद है। मानो भौतिक विज्ञान तो तुम्हारा महान है और यह जो विज्ञान है यह आध्यात्मिकवाद की भूमिका कहलाती है। सब से प्रथम तुम अपने में विज्ञानवेता बनो। विज्ञानवेता बन कर के अणु और परमाणुओं पर अन्वेषण करो। वह विश्वामित्र के आश्रम में नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण भी होता रहा और उस वैज्ञानिक यन्त्रों में विद्यमान हो करके अपने में उड़ाने उड़ते रहते। जैसे महर्षि तत्व मुनि महाराज के यहां नाना ब्रह्मचारी जब विज्ञानवेता बनने के लिए लोक लोकान्तरों की माला बनाते रहते थे। लोकों की जब माला बनती रहती है और वह जो माला है वह इसलिए विचित्रतम कहलाती है क्योंकि जैसे एक लोक दूसरे लोक का सहायक बन जाता है इसी प्रकार राष्ट्र एक दूसरे राष्ट्र का सहायक बन जाता है। इसी प्रकार लोक लोकान्तरों की माला बनाते रहे हैं। तो यह माला अपने में जो लोक है वह मनका है और वह ब्रह्मसूत्र में पिरोया हुआ है और

ब्रह्मसूत्र में जब वह पिरोया जाता है तो वह वृत्तियां बन जाता है।

विचार आता रहता है बेटा जब माला, एक माला है जिसका चन्द्रमा से समन्वय रहता है और चन्द्रमा का समन्वय पूर्णिमा की रात्री से रहता है। और रात्रि का समन्वय मानव के जीवन से रहता है, अमृत से रहता है और पृथ्वी के गर्भ में जो नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ पनप रहा है उससे उसका समन्वय रहता है और यह सब ब्रह्मसूत्र में पिरोए जाते हैं। और ब्रह्मसूत्र में पिरोने से वह माला बन जाती है। उस माला को मुनिवरों द्वारा धारयामि बनाया जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि विश्वामित्र भगवान राम और वृतिका ब्रह्मचारी व्रहेव्रत्म यह नाना ऋषिवर विद्यमान होकर के अपने में यह विचार रहे थे कि यह जो सूर्य है सूर्य इतना विशाल है कि इसमें तेरह लाख (१३,००,०००) पृथ्वियां समाहित हो जाती हैं उसके लिए कितने चन्द्रमा हैं जो उसके संरक्षण में क्रिया कलाप करते हैं।

मुझे स्मरण है महर्षि भारद्वाज मुनि की विज्ञानशालाएं। ऐसा दृष्टिपात किया गया परन्तु शिकामकेतु उद्दालक मुनि महाराज के यहां भिन्नता में दृष्टिपात किया गया और महर्षि विश्वामित्र के यहां शिकाम केतु उद्दालक में भिन्नता के बारे में जब विचारा गया तो शिकामकेतू उद्दालक का इतना विशाल विज्ञान था जिसमें मानो करोड़ों चन्द्रमा सूर्य की सहायता से गमन कर रहे थे। जब यही अनुसन्धान महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां पहुंचा तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने अपने यहां लगभग एक करोड़ से सूक्ष्म अपनी विज्ञानशाला में जाना और वही महर्षि विश्वामित्र के यहां की लगभग (८५,००,०००) पचासी लाख चन्द्रमा सूर्य की सहायता से गमन करते ज़ाना। अपनी अपनी जानकारी होती है, अपने अपने विचार होते हैं। तो चन्द्रमाओं की माला बनती है और उस माला को कौन सरंक्षण दे रहा है ? वही माला है जो बेटा चन्द्रमा का समन्वय सूर्य से होता है। और सूर्य और चन्द्रमा दोनों का समन्वय होकर के पृथ्वी को अमृतमयी बनाया जाता है। नाना प्रकार के खनिजों को तपाया जाता है। वह पृथ्वी मण्डल से अपने में धारयामि बनते हैं।

तो बेटा, मैं विशेषता में न जाता हुआ केवल यही कि नाना सूर्यों की एक माला और एक चन्द्रमाओं की माला बन जाती है। इसी प्रकार एक माला है जो

सूर्यों की माला है और वह माला करोड़ों सूर्यों की माला बनती है। माला के सम्बन्ध में तो विचारने से यह प्रतीत होगा कि प्रभु को जो यह ब्रह्माण्ड है यह इतना अनन्तमयी है कि हम प्रभु के राष्ट्र में चन्द्रमा के चन्द्रमण्डलों को भी गणना में नहीं ला सकते कि कितने चन्द्रमा हैं ? जब करोड़ों करोड़ों चन्द्रमा सूर्यों के संरक्षण में गमन करते हैं तो विचारने से प्रतीत होता है कि एक सहस्त्र सूर्य जब वह वृहस्पति में समाहित होते होंगे तो चन्द्रमा कितने हैं ? इनकी क्या गणना हो सकती है ? यह असम्भव प्रतीत होता रहता है। तो प्रभु का जो विज्ञान है वह अनन्तमयी है। मानव सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान के काल तक नाना प्रकार का अन्वेषण करता रहा है। विचार विनिमय करता रहा है। क्योंकि मानव के मस्तिष्क का जब निर्माण हुआ तो वह ब्रह्माण्ड की धाराओं से हुआ है और ब्रह्माण्ड की धाराएं उस पिण्ड में विद्यमान हैं। इसलिए मानव अपने लघुमस्तिष्क की धाराओं को भी गणना में नहीं ला सकता। रेणकेतु जो मस्तिष्क है उसका जो समन्वय सर्वत्र प्रकृति स्वरूप से होता है तो उसको भी जानने में वह असमर्थ रहता है। इसीलिए हमारे यहां वेद के ऋषियों ने यह कहा कि इसके ऊपर अन्वेषण करते हुए कि यह भौतिक विज्ञान है, भौतिकवाद है, यह लोक लोकान्तरों का समूह माना गया है। जैसे शुक्र मण्डल है और शुक्र मण्डल पृथ्वी से भी वह वराहगत (विशाल) कहलाता है। जब गणना में आते हैं तो एक शुक्रमण्डल है उस शुक्रमण्डल का वुद्ध से समन्वय रहता है और बुद्ध का स्वाति नक्षत्र से समन्वय हो करके एक माला हमें ऐसी दृष्टिपात आती है जिस माला को धारण करके वाजपेयी याग बुद्धिमान के द्वारा सिद्ध होता रहता है।

तो मैं इस संदर्भ में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूं। क्योंकि मालाओं की गणना करते करते वेद के ऋषि कणाद ने, रेनब्रेतिओं ने, महर्षि विभाण्डक ने यह कहा है हे प्रभु ! देखो मैं समाधि लगा कर के भी परमाणुवाद को जानता रहूं, इस पृथ्वी के जानने में रत रहा रहूं और यदि मैं परमाणुवाद को स्थूल से जानता रहूं तो प्रभु ! मेरी एक सहस्त्र वर्षों की अवस्था हो वह भी सूक्ष्म है। और यदि मैं समाधि लगा कर इस ब्रह्माण्ड को अपने में मापने लगूं तो प्रभु ! मैं इसको मापता मापता बहुत दूर चला जाऊंगा। अन्त में यह हो जाएगा कि मैं अपने को अपने में ही समाप्त कर लूंगा। हे प्रभु ! इस प्रकार का जो तेरा

यह अनुपम जगत है यह महान है। इतना विचारणीय है कि इसके ऊपर अन्वेषण करना मेरे लिए असम्भव है। तो यह महर्षि विभाण्डक ने अपने वाक्यों में वर्णन किया है। आज मैं इस संदर्भ में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता। केवल विचार का विषय यह कि मानव को अपने मन की माला अपने मन के विचारो की माला बनानी चाहिए। उस माला का जो सूत्र बनेगा, वह प्राण बनेगा और प्राण प्राणत्व कहलाता है और वह नाना प्रकार की गतियां ब्रह्मसूत्र में पिरोई जाएंगी तो उस मन के ऊपर हमारा विचार प्राय: होना चाहिए कि यह मन से एक तरंग उत्पन्न होती है दूसरी तरंगें मानो उपलब्ध हो जाती हैं। एक समाप्त नहीं होती कि दूसरी उत्पन्न हो जाती है। तो यह हम अपने में अनुभव नहीं कर पाते कि कितनी तरंगें हम इस मानसिक जगत से लेकर के चलते हैं और एक एक तरंग में सहस्त्रों तरंगें होती हैं और उन सहस्त्रों तरंगों में भी अरबों खरबों तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। तो विचार विनिमय यह कि "विचार अमृताम भू वरूणम ब्रह्मे वाहया:" इस मन को अपने उस ब्रह्म सूत्र में पिरोने के लिए या प्राण सूत्र में पिरोते हुए हम गति करते चले जाएं। प्रत्येक मानव यह कह रहा है कि मन को स्थिरता में लाना चाहिए। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहते रहते हैं कि मन को स्थिर बनाना चाहिए। मन स्थिर जब बनता है जब प्रभु का जो प्राकृतिक आहार है उसे हम ग्रहण करते चले जाएं।

मैं आहारों की चर्चा करता रहता हूं। जब आहार हमारा इतना मौलिक तत्वों में रमण कर जाएगा कि हमारा शरीर उसे मन द्वारा ग्रहण करने लगेगा तो मन की तरंगों का प्रादुर्भाव होता रहेगा। वह अन्न के स्पर्श करते ही उसमें दूसरी तरंगों का प्रादुर्भाव हो जाता है। जैसे अन्नाद है उस अन्नाद में वह द्रव्य है कि किसी के अधिकार को हम अपने में ग्रहण कर लेते हैं, उसका द्रव्य आ जाता है, वह हमारे योग वृतियों को नष्ट कर देता है। तो विचार आता रहता है कि मन में उसी प्रकार की तरंगों का प्रादुर्भाव होता है तो वह मन प्राण के साथ लग नहीं पाता। वह प्रभु से लगने के भाव में नहीं आ पाता। विचार आता रहता है कि प्रकृति के तत्वों को जान करके ही प्रकृति के निकट जा करके, हम अपने को जान करके सदैव अपनी आभा में रत हो सकते हैं। तो विचार विनिमय क्या ? मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट नहीं कर रहा हूं। मुझे तो वह काल

बारम्बार स्मरण आता रहता है जब मेरे पूज्यपाद गुरूदेव अन्नाद के ऊपर बल देते रहे हैं, अन्नाद के ऊपर अपनी वृतियां अपना विचार देते रहे हैं। वह ऐसी यौगिक मुद्राओं से कहीं संकल्पोंमयी प्राणायाम से अन्नाद को अपने में सिञ्चन करते रहे है और उस अन्नाद से मन कहीं नहीं जा पाता। तो यह ऋषि मुनियों की बड़ी विचित्र उपलब्धियां मानी गई हैं। आज मैं इस संदर्भ में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूं।

मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं जिस क्षेत्र में मानवत्व अपने में विज्ञान वेता बन करके इस प्रकृति मण्डल को जानने के लिए तत्पर रहता है। मुझे स्मरण आता है जब मैं धर्म और मानवीयता की और मानव दर्शन की हम चर्चा करने लगते हैं तो वह चर्चा एक गौणिक रूप में रहं जाती है। "विचारम व्रह्मा कृत्म देवत्वाम लोकाम दिव्यम गत:प्रवाह वरूणसुता:'' वेद का वाक्य कहता है कि परमपिता परमात्मा को अपना वरूण बना करके मन के ऊपर उसकी प्रतिक्रिया रहनी चाहिए। तो विचार क्या कि प्राणों का परस्पर संघर्ष होना चाहिए, प्राणों का एक दूसरे में मिलन होना चाहिए जिससे प्राण एक दूसरे से मिलन करता हुआ एक दूसरे में एकत्रित हो करके उन सबकी तरंगें एक ही सूत्र में आ जाएं और मन उनके ऊपर विकृत हो जाए, विश्राम करने लगे तो यह मन अमृत को प्राप्त करता रहता है। यह अमृतमयी बन जाता है। यह अमृत क्या है ?

तो विचारने का अभिप्राय: बेटा हमारा यह कि मन जैसे चन्द्रमा सूर्य की सहायता से यह अमृत देता है इसी प्रकार यह आत्मा के प्रकाश से और प्राण के सहयोग से यह मन् भी अमृत देता रहता है, और कहीं विष देता रहता है। तो उस अमृत को ग्रहण करने के लिए एकाग्र हो करके यह प्राण सूत्र में मन के द्वारा उस अमृत को हमें ग्रहण करना चाहिए। जैसे चन्द्रमा सूर्य से सहायता ले करके, प्रकाश ले करके, पृथ्वी से समन्वय हो करके यह अन्नाद को पिण्ड को बनाता है, उसमें अमृत होता है। वह अमृत देकर के जलाशयों में प्रवेश हो जाता है और अमृत को प्राप्त करके यह अन्नाद का पिण्ड बना और पिण्ड का सूक्ष्म रूप बना। सूक्ष्म रूप का पुन: पिण्ड बना और पिण्ड का सूक्ष्म रूप बन करके उसका रेतस् बना, रेतस् बनकर के यह दिव्य रूप को धारण करके वही

उत्पति के मूल में प्रतिभाषित होता रहता है। तो बेटा मैं विशेषता में नहीं केवल विचार विनिमय यह कि हम उस परमपिता परमात्मा के अनुपम जगत को विचारने में रत हो जाएं और उसको जानते रहें, उसको जानना ही हमारा कर्तव्य है। इसीलिए अभी मन को जानना ही अभीक है और मन के द्वार पर मन को एकाग्र करना है तो प्राणों का संघात अनिवार्य है। और प्राणों की तरंगों में जो अन्नाद का उत्पन्न होना है वह बहुत ही अनिवार्य है क्योंकि यह मन ही लोक लोकान्तरों की माला बना लेता है। और यह मन ही अणु और परमाणुओं की माला बना लेता है। और यही निहारिकाओं की माला बना लेता है और माला बना करके आत्मा के स्वरूप में चला जाता है। और प्राण के सहित आत्मा के समीप जाता है क्योंकि इस आत्मा का मन प्रतिविम्ब है यह उसी में रत रहने वाला है। तो इसको हमें जानना है।

तो विचारने का हमारा अभिप्राय यह हम परमपिता परमात्मा की महति को जानते हुए और पूर्णिमा के दिवस मानो चन्द्रमा जो अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त होता है। यही पूर्णिमा प्रत्येक लोक लोकान्तरों में एक ही रहस्य के लिए रहता है। यदि हम मंगल मण्डल में जाते हैं तो वहां भी यही रहस्यतम उसका दृष्टिपात आता है। वशिष्ठ मण्डल में जाते हैं तो वहां भी चन्द्रमा का यही रहस्य दृष्टिपात आता है। यदि हम अरून्धति मण्डल में चले जाते हैं तो वहां भी चन्द्रमा का यही रहस्य आता है। वह अमृत देता रहता है। इसी प्रकार यदि हम बुध में जाते हैं तो वहां भी इसी प्रकार का रहस्य है और यदि हम शुक्र में 'अमृताम' में जाते हैं तो वहां भी यही रहस्य रहता है। तो विचारने का अभिप्राय यह कि रहस्य केवल इसी प्रकार का पक्ष है। चन्द्रमा के पक्षों में प्रतीत होना पक्षों में रहता है। पन्द्रह दिवस शुक्ल पक्ष के हैं और पन्द्रह ही दिवस कृष्ण पक्ष के कहलाते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है कि पूर्व कालों में जब मेरे पूज्यपाद गुरूदेव रुग्ण हो गए तो रूग्ण हो करके अपने में जब रूग्ण समाप्त हो गया तो उन्होंने विचारा कि मैं अपने शरीर को त्यागूंगा। तो वह अपने शरीर को अपनी वृतियों को शुक्ल पक्ष में ले गए। यहां शुक्ल पक्ष का अभिप्राय यह है कि हमें ज्ञानी बनना चाहिए और जब अध्यात्मिकवेता बन जाता है और आध्यात्मिकता में विज्ञान को जान लेता है उस समय वह प्राणायाम के द्वारा

अपनी उस विद्या को जान करके प्राण के द्वारा प्राणायाम के द्वारा जब शुक्ल पक्ष में बेटा अपनी वृतियों को, अपने ज्ञान को लेकर के जब ज्ञान में चले गए तों अपने शरीर को प्राणायाम के माध्यम से शरीर को त्यागा क्योंकि ज्ञान का नाम ही शुक्ल पक्ष है।

बेटा, विचार आता रहता है कि तुम्हें यह महाभारत काल की वार्ता भी कई कालों में मैंने प्रकट की है। इसी प्रकार मैंने अपने पूज्यपाद गुरूदेव को और यहां नाना ऋषि मुनि अपने में जब ज्ञान और विवेक में ले गए, जब वह शुक्ल पक्ष उनके जीवन में आ गया है, शुक्ल पक्ष का अभिप्राय: प्रकाश है और कृष्ण पक्ष का अभिप्राय: अन्धकार कहा जाता है। आध्यात्मिक़वाद में और भौतिकवाद में वह शुक्ल पक्ष मानो चन्द्रमा अपनी कलाओं से अमृत देता रहता है और अन्न देते हुए अमृत को अपने में समेटता रहता् है। एक दिवस वह आता है कि अमावस के दिवस एक भी अंकुर चन्द्रमा का नहीं होता और एक दिवस ऐसा आता है कि अपनी समस्त कलाओं से युक्त होकर पूर्णिमा का चन्द्रमा बन करके वह अमृत को सोम को देता है। वह सोम को देना ही प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक अपने पन्द्रह दिवस शुक्ल पक्ष को देता है और कृष्ण पक्ष वह अपने में अपने को सूक्ष्म बनाता रहता है। और देखो पूर्णिमा के दिवस प्रतिपदा आती है तो एक कला चली गई, द्वितीया आती है तो दो कला चली गईं। इसी प्रकार कलाओं से विस्मृत हो जाता है और वह अमांवस का दिवस बन करके अन्धकार में वह परिणत हो जाता है।

वाह रे मेरे प्रभु ! तेरा विज्ञान कितना अनुपम है। तेरे विज्ञान का जब मैं वखान करने लगूं तो हे प्रभु ! मुझे कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता है कि मैं क्या उद्‌गीत गाने लगूं तेरे सम्बन्ध में। हे प्रभु ! तेरा इतना अनुपम यह रहस्यात्मक जगत है। इसका जो व्यवधान है वह बड़ा विशाल है। मैं यह चन्द्रमा के ऊपर अपने विचार देता रहूं तो बेटा वर्षों चले जाएंगे परन्तु यह चन्द्र विज्ञान मेरे से समाप्त नहीं हो सकेगा। हे प्रभु ! इतना विशाल, इतना महान यह विज्ञान है कि दोनों पक्ष अपने में पूर्णता को प्राप्त होते रहे हैं। बेटा, जब एक पदा चली जाती है तो उसमें अमृत की सूक्ष्मता द्वितीय में चली गई। अमृत की सूक्ष्मता और अमावस का दिवस आता है तो अमृतमयी चला जाता है। इसीलिए

आध्यात्मिकवादी विचारता है कि तेरा जीवन अमावस की भांति नहीं होना चाहिए। तेरा जीवन तो मानो पूर्णिमा के दिवस भांति होना चाहिए। परन्तु इसमें एक आध्यात्मिक वाद यह भी है कि यदि एक कला चली जाए और अमावस आ जाए, अन्धकार आ जाए तो हे मानव, तू अपने में विस्मृत मत करना मानो तुझे निराशा में नहीं रहना चाहिए। उसमें तू सदैव अपने में गम्भीर मुद्रा में जब एक पदा, द्विपदा और पूर्णिमा का दिवस यदि तू सिद्ध कर ले तो तेरे हृदय में अभिमान की मात्रा नहीं आएगी। अभिमानी भी मत बनो कि शुक्ल पक्ष प्रकाश और कृष्ण पक्ष अन्धकार में दोनो में अन्धकार आ जाए। तो उसमें तुम अपने को इस प्रकार विसमृत न करो और यदि प्रकाश ही प्रकाश आ जाए, सब प्रकार की विद्या विस्मृत भी हो, द्रव्य भी हो, ममत्व भी हो अर्थात सर्वत्रता तुम्हारे द्वारा हो तो उसमें अभिमान मत करो। क्योंकि परमपिता परमात्मा अभिमान से रहित है इसलिए हे मानव, तुझे भी अभिमान से रहित हो जाना चाहिए। परमपिता परमात्मा अकाए है इसलिए काए के ऊपर विचार विनिमय नहीं करना चाहिए। "अकायाम भू वरूणम" वह अपने को व्यापकवाद में ले जाओ। परमपिता परमात्मा ज्ञानी हैं इसलिए ज्ञानी बनो, परमात्मा शुक्ल पक्ष है इसीलिए मानव को शुक्ल पक्ष में जा करके अपने शरीरों से आत्मा को पृथक करना चाहिए।

बेटा, यह आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा है कि मानव जब महान से महान क्रिया कलापों में रत हो जाता है और अपनी क्रियाओं में रत होकर के इस प्रकार का विचार उसके मन मस्तिष्क में होता है तो वह महानता में गमन करता रहता है। तो बेटा आज का विचार मेरे प्यारे महानन्द जी सदैव यह उदगीत गाते रहते हैं कि मैं भी दो शब्द उच्चारण करूं परन्तु यह तो वाक्य समाप्त हो गया है। आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। कल समय मिलेगा तो इसके ऊपर विचार विनिमय्र कर पाएंगे। आज का विचार हमारे वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस सागर से पार हो जाएं। अब वेदों का पठन पाठन होगा। वेद पाठ।।

ॐ

धर्म और राष्ट्रवाद की विवेचना

स्थान : लाक्षागृह, वरनावा, मेरठ
दिनांक : २२.२.१९९१

जीते रहो।

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहा है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण गान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गए हैं और हमारे अन्तर्हृदयों में विद्यमान रहते हैं। तो आज के हमारे वेद मन्त्र में मानवीय तथ्यों की चर्चाएं हमारे यहां आती रही हैं क्योंकि वेद मन्त्र हमारे यहां उद्गीत गाता रहता है। क्योंकि वेद मन्त्रों में ऐसा भी विज्ञान है जो बहुत ऊर्ध्वा में मानव को ले जाता है और वह विज्ञान अनन्त है परन्तु मानव उन क्रियाओं को, उन विद्याओं को लाने में असमर्थ रहता है।

बहुत से क्रिया कलाप अथवा वैदिक साहित्य में जो विद्याओं का वर्णन होता रहा है वह लोक लोकान्तरों में जाना और वहां के क्रिया कलापों को जानना और अपने में समाधिष्ट होकर के वेद मन्त्रों के ऊपर अन्वेषण करना और अन्त में मौन हो जाना है। यह प्रायः ज्ञान और विज्ञान की विचित्र उड़ानों का एक समूह माना गया है। तो विचारवेता अपने यहां "परमय ब्रह्मणा परमजम नेत्य हिरणयम व्रहाः" वेद का मन्त्र कहता है कि हम सब इस हिरणय गर्भ में मानो परमपिता परमात्मा के गर्भ में विद्यमान रहते हैं और जितना भी ज्ञान और विज्ञान है, चाहे वह लोक लोकान्तरों में जाने वाला हो, चाहे अपने में समाधिष्ट रहने वाला योगी हो, चाहे वह हृदयंगम ज्योति में उस परमपिता परमात्मा को ध्यानावस्थित करने वाला हो, चाहे वह लोक लोकान्तरों में मंगल में चला जाए, बुद्ध में शुक्र में किसी भी मण्डल में प्रवेश कर जाए परन्तु

आत्मवेत्ता बन करके भी उस परमपिता परमात्मा के गर्भ में निहित रहते हैं और उसी के गर्भ में हम मानो अपने में हिरणयमयी कहलाते हैं।

आज का हमारा विचार है कि एक एक वेद मन्त्र में इस प्रकार की विद्याओं का वर्णन आता रहा है, जिन विद्याओं को हम मस्तिष्क में ला भी नहीं सकते परन्तु वे वेद की ऋचाएं कहलाती हैं। तो आज का हमारा विचार क्या कह रहा है ? वेद मन्त्र अपने में बड़ा अद्वितीय कहलाता है। परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान भी अद्वितीय कहलाता है जिसके ऊपर मानव सृष्टि के प्रारम्भ से अन्वेषण करता रहा है। महात्मा अथर्वा ने एक समय अपने में निर्णय लिया कि हमारी जो भावनाओं का सम्बन्ध है, वह प्राणों से है और प्राणों का समन्वय परमाणुवाद से है और परमाणुवाद का समन्वय अग्नि से है और अग्नि का जो समन्वय रहता है वह अन्तरिक्ष से रहता है। अन्तरिक्ष का जो समन्वय है यह 'अदित्य अन्तरिक्ष अव्रता:' कि आभा में रत रहने वाला है।

तो इसीलिए एक दूसरे में हम एक दूसरे को दृष्टिपात करते रहते हैं। तो विचार आता रहता है कि यह जो समन्वय रहता है, यह जो हमारे यहां चन्द्रमा का समन्वय पृथ्वी से रात्री में विशेष होता है क्योंकि पृथ्वी के गर्भ में ही तो चन्द्रमा की जो कान्तियां हैं, अथवा वह जो रस है उसे पृथ्वी सोम बना कर के अपने में धारण कर रही है। वह सोम ममत्व कहलाता है। और इसी प्रकार यह जो पृथ्वी है यह अपने में वसुन्धरा बन करके इसका चिन्तन कर रही है और आपो का जो समन्वय है मानो अमृत को बनाना, अमृत को प्रदान करना है और प्रदान करके चन्द्रमा की आभा में रत्त होना है। तो आज मैं विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। केवल विचार विनिमय यह कि वेद मन्त्रों में वैदिक ज्ञान में, साहित्य में बेटा, इस प्रकार की विद्याएं हैं जो बड़ी विचित्र कहलाती हैं।

बेटा, विचार क्या कि हम चन्द्रमा की उपासना करने वाले बने और चन्द्रमा जब सोम बन कर के समुद्रों से मिलान करता है तो उसमें परमाणुवाद ऐसे प्रादुर्भाव से प्राप्त होता है कि परमाणु का उग्र रूप बन जाता है और वह पृथ्वी को भी अपने में धारण कर लेता है अथवा जलमग्न हो करके प्राणियों को ह्रास हो जाता है। जब ''पाताम र्स्वनम ववित्म देवा:'' वेद मन्त्र यह कह रहा

है यह जो वायु मण्ड़ल है यह हमारे दूषित विचारों से दूषित हो जाता है, व्यवहारों से मानो ऐसा भरण हो जाता है। जब यह भरण हो जाता है तो शुद्धिकरण पर भी अशुद्धिकरण का आवरण छा जाता है। वह जो आवरण छा जाता है वह आवरण कैसे नष्ट होगा ? यह विचारने का एक प्रसंग है और हमारे आचार्यों ने इसको चिन्तन में लाने का प्रयास किया। उन्होंने इस प्रदूषण के आवरण को नष्ट करने के लिए प्रयास किया क्योंकि प्रकृति के नाना प्रकार के प्रकोप होते हैं। चन्द्रमा का समन्वय सूर्य से होता है और सूर्य का समन्वय समुद्रों से आवृत हो जाता है और समुद्रों का समन्वय वह महतत्वों की और अग्नि की पुट लग करके इसके जलाशयों का अथवा "सोम ब्रह्मे'' यह जलाशयों में से जल का उत्थान होता है। और जल का उत्थान होने से वह वृष्टि रूप में परिणत हो जाता है। जो अनावृष्टि है वह इस प्रदूषण का एक महान मूल कारण बनता रहा है। हमारे यहां वेद वेताओं ने, चिन्तन करने वालों ने कहा है कि हे मानव, तू अपनी वाणी से सत्यवत् बन और अपने क्रियाकलापों में सदैव सत् से तत्पर रह।

हमारे यहां यागों का जो विधान है अथवा यागों का जो चलन है, परम्परागतों से ही ऋषि मुनियों नें इसके ऊपर बड़ा बल दिया है और वैज्ञानिक वेताओं ने भी इसके ऊपर बड़ा बल दिया है। इसलिए हमें विचारना है, हमें अपने में बलवर्धक (बलिष्ठ) बन करके हमें जानना चाहिए कि हमारा वेद मन्त्र या वैदिकवेता हमारे यहां क्या उद्गीत गाते रहे हैं ? तो आज मैं विशेष चर्चा देने नहीं आया हूं। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे। परन्तु इनकी बड़ी प्रेरणा रही है और यह प्रेरणा के बड़े प्रेरित बन रहे हैं।

ऋषि महानन्द जी का प्रवचन

"ओ३म् नम रथम् दिव्याम गतम् ब्रह्मणा' मेरे पूज्यपाद गुरूदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल, अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरूदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे परन्तु मनोनीत (मानसिक) यह इच्छा रहती है कि इस संसार को एक एक शब्द में पिरो लिया जाए। हमारा यह बड़ा सौभाग्य रहा है कि इनके चरणों में विद्यमान हो करके हम लोक लोकान्तरों की प्रायः उड़ान

उड़ते रहे हैं और लोक लोकान्तरों की चर्चाएं पूज्यपाद गुरूदेव के मुखारविन्दु से श्रवण करते हुए हम अपने में अपनेपन का सौभाग्य स्वीकार करते रहे हैं। क्योंकि पूज्यपाद गुरूदेव तो अध्यात्मवाद अथवा विज्ञानवाद की ऊंची ऊंची उड़ाने उड़ते रहते हैं। कई समय हो गया है चन्द्रमा की उड़ाने उड़ते हुए। चन्द्रलोक में क्या क्या है, इनका इकाई में भी विचार नहीं आ पाया।

जब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह कहता हूं कि प्रभु ! यह धर्म क्या है ? क्योंकि प्रत्येक मानव धर्म के ऊपर भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचना कर रहा है। हम परम्परा से ही, सृष्टि के प्रारम्भ से इस संसार को दृष्टिपात करते रहे हैं। परन्तु विचारवेत्ता और हम यह कहा करते हैं कि परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान इतना अनूठा है जितनी राष्ट्रीयता है कि प्रत्येक परमाणु अपने अनुशासन में गमन कर रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने राष्ट्रवाद की चर्चा करते हुए यह वर्णन कराया, बहुत समय हुआ जब मैं ने पूज्यपाद गुरूदेव से एक प्रश्न किया था कि पूज्यपाद ! यह जो आधुनिक काल में वर्तमान काल में विज्ञान का प्रादुर्भाव हो रहा है या विज्ञान उसमें गतिवान बन रहा है इसमें इस विज्ञान का परिणाम क्या होगा ? तो मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे यह वर्णन कराया कि जिस भी काल में विज्ञान का दुरुपयोग होता है या राष्ट्रीयता उसमें निहित नहीं होती और राष्ट्र विज्ञान में द्रव्य को दृष्टिपात करता है तो वह राष्ट्र विनाश के मार्ग की ओर अग्रसर हो रहा है, क्योंकि राजा का सबसे प्रथम जो कर्तव्य होता है वह राष्ट्रवाद को पवित्रता की प्रतिभा में लाना है।

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कई काल में मुझे वर्णन कराते हुए कहा कि राष्ट्र विज्ञान से तपों से ऊंचा बनता है। और जो वर्तमान का काल है इसमें तप की अहवेलना हो रही है, तप नहीं रहा है। तो इसलिये मानव अपने में राष्ट्रवाद की घोषणा कर रहा है परन्तु राष्ट्रवाद का इसे ज्ञान नहीं है कि राष्ट्रवाद कहते किसे हैं। राष्ट्रवाद कहते हैं जहां एकाकी धर्म रहता है, एकाकी विचार रहता है। और जहां भिन्न भिन्न प्रकार के ईश्वरीय विचार होते हैं, वहां राष्ट्र और समाज में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। जब संसार में एकाकी विचार रहता है अथवा अग्न्याधान के विचार रहते हैं तो अग्नि भी प्रदीप्त रहनी चाहिए। यदि उसमें मन कर्म वचन की चर्चाएं, जैसे पूज्यपाद गुरूदेव ने वर्णन

कराया है, यदि यह रहती हैं तो राष्ट्र में एक महानता का दर्शन होता है और वह महानता की वेदी पर निहित होता है।

आधुनिक काल में यह जो परमाणुवाद है अथवा यह जो वायुमण्डल है, यह दूषित होने जा रहा है। इस वायुमण्डल में परमाणुओं की प्रतिभा अथवा जो अग्नि की ऊर्ध्वा सत्ता है, यह अग्नि का जो प्राय:वृति कहलाता है यह वायुमण्डल में छा रहा है, कहीं समुद्रों में छा रहा है। देखो आन्तरिक पृथ्वी के गर्भ से, माता वसुन्धरा के गर्भ के वे परमाणु या इसमें जो शक्तिशाली जलाशय है, उसको बाह्य जगत में लाया जा रहा है और लाकर के इसके विनाश के लिए मानव अपने में नृत्य कर रहा है और यह विचार रहा है कि इसका विनाश कैसे हो। तो विनाश के लिए प्रत्येक मानव अपनी स्वार्थपरता में रत हो रहा है। विचार आता है कि इसके मूल में क्या है ? इसके मूल में मैं जानता हूं। भगवन् ! आज इसे मैं उद्गीत रूप में गाना चाहता हूं क्योंकि जब भी ईश्वर के नाम पर रूढ़ियां बनती हैं वह रूढ़ियां विनाश के मार्ग पर ले जाती हैं।

इसलिए जो भी राजा हो या जितने भी संसार के महापुरुष हो वे सवर्त्र एक स्थली पर विद्यमान होकर के ज्ञान और विज्ञान को समेट कर के और वह विज्ञान का दुरुपयोग न कर सकें। ईश्वर के नाम पर जो रूढ़ियां बनती हैं उन रूढ़ियों का ह्रास होना चाहिए। उन रूढ़ियों का जब तक विनाश नहीं होगा तब तक मानव में एकाकीकरण नहीं आ सकेगा, न राष्ट्र उनका आ सकेगा, न प्राणी मात्र का आ सकेगा। इसीलिए विचार आता रहता है, मैंने अपने पूज्यपाद गुरूदेव से बहुत पुरातन काल में जब यह प्रश्न किया था कि प्रभु जो केवल राष्ट्र में धर्म के नाम पर रूढ़ियां बनी रहती हैं उनका क्या बनेगा ? तो पूज्यपाद गुरूदेव ने कहा कि कुछ समय के पश्चात इनका विनाश होने वाला है अथवा उनका ह्रास होने वाला है।

तो इसीलिए विचार आता रहता है, मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह अराधना अथवा विचार विनिमय करता रहा हूं कि यह संसार जो आधुनिक काल का है जो राष्ट्रवेत्ता है यह नाना प्रकार की स्वार्थपरता में, राष्ट्रीयता में अपने मानवीय धर्म से इसका ह्रास करने जा रहा है। मैं यह कहता रहता हूं कि राजा को चाहिए कि यदि राष्ट्रवेता समाज को पुन: से ऊंचा बनाना चाहता

है तो नाना प्रकार की रूढ़ियों का विनाश करना होगा, नाना प्रकार की रूढ़ियां जब तक रहेंगी विचारों में तब तक यह राष्ट्र और समाज कदापि ऊंचा नहीं बनेगा। पूज्यपाद गुरूदेव से जब मैं प्रश्न करता रहता हूं, विचार विनिमय होता रहता है तो इनके विचारों में यह प्रतीत होता है कि संसार में कोई मोहम्मद के मानने वाला है, कोई ईसा के मानने वाला है, भिन्न भिन्न प्रकार की मान्यताएं हैं। परन्तु उनमें यह नहीं विचारा जाता कि इनमें कुरीतियां कितनी हैं। उन कुरीतियों के ऊपर भी तो विचार विनिमय होना चाहिए। कोई राष्ट्र यह नहीं विचारता कि उनमें कुरीतियां कैसे समाप्त होंगी। वे कुरीतियां तब समाप्त होंगी जब मानवीयता जिसमें जिस रूढ़ि में किसी प्रकार की न्यूनता है या सूक्ष्मता है, या संकीर्णता है तो उसे व्यापकवाद की आभा में लाकर के समाप्त कर देना होगा। मैंने अपने पूज्यपाद गुरूदेव से बहुत पुरातन काल में कहा कि इसका ह्रास होने जा रहा है। ह्रासता के मूल में अपनी अपनी स्वार्थपरता है जिनकी रूढ़ि केवल धर्म तक ही रहती है, जिनका रूढ़िवाद ही धर्म प्रचार तक रहता है। राष्ट्र बल धर्म नहीं करते, उसका परिवर्तन होकर के राष्ट्रीयता पर रहता है। राष्ट्र तो केवल एक समूह है और राष्ट्र तो मानव को कर्तव्यवाद में लाने के लिए केवल एक अनुशासन है।

परन्तु वह जो परमात्मा का अनुशासन है वह पूज्यपाद गुरूदेव मुझे वर्णन कराते रहते हैं। प्रत्येक लोक लोकान्तर अपने में अनुशासन में रत्त हो रहा है, इसी अनुशासन में स्वर्ग पृथ्वी और ब्रह्माण्ड अपने में रत्त हो रहे हैं और उसी अनुशासन के आधार पर जब राष्ट्रवेत्ता अपने राष्ट्र का निर्माण करता है तो उसका कल्याण होना प्रारम्भ हो जाता है। जब रूढ़ियां धर्म के नामों पर प्रचलित हो जाती हैं तो रूढ़ियों में सूक्ष्मता है। यदि एक लेखक किसी विषय को अपनी लेखिनीबद्ध कर रहा है और लेखिनीबद्ध करते करते जब एक पोथी का निर्माण कर लेता है, यदि उस पोथी में एक भी शब्द ऐसा आ जाता है जो अन्धकार में ले जाता है तो वह स्वयं सर्व पोथी का घातक बन जाता है। उसी पोथी का वह एक ही शब्द घातक बन जाता है। इसी प्रकार मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह प्रार्थना करता रहता हूं प्रभु 'अमृताम देवो'। इसीलिए रूढ़ियों की पोथियों में एक एक सूक्ष्मता ऐसी है, एक एक संकीर्णता ऐसी है कि

इसके ऊपर ये विनाश के मार्ग पर चले जाते हैं।

विचार आता रहता है, मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को परिचय देने आया हूं। विचार विनिमय क्या है ? जो माता को कोई माता स्वीकार करता है और जो भगिनी को भगिनी स्वीकार कर लेता है, जो विधाता को विधाता स्वीकार करता है, जो माता को मांता की दृष्टि से पान करता हुआ अपने में ओजस्वी बन जाता है, वह महान बन् करके, पवित्र बन करके इस संसार सागर से पार होने का प्रचार करता है। जब मैं यह विचारता रहता हूं कि आधुनिक जगत् में इस पृथ्वी मण्डल पर संग्राम की प्रतिभा जागरूक हो रही है और यह जागरूकता क्या कि प्राणी को प्राणी ह्रास कर रहा है। यह कोई राष्ट्रीयता नहीं होती, यह मानव की स्वार्थपरता है। यह स्वार्थपरता जितनी बलवती होती रहेगी उतना ही विज्ञान का दुरुपयोग होता रहेगा और वह विज्ञान ही विज्ञान को नष्ट कर देता है। जैसे मुझे पूज्यपाद गुरूदेव ने एक समय वर्णन कराया कि महाराजा शिव और भस्मासुर की जो वार्ता आती रहती है। माता पार्वती सती ने जब ताण्डव नृत्य किया और वही नृत्य भस्मासुर को करने के लिए कहा तो अपने नृत्य से ही भस्मासुर समाप्त हो गया। इसी प्रकार आधुनिक कालं में जो यन्त्र वाद है, आधुनिक काल में जो विज्ञानवाद है उस विज्ञान को जानने के लिए मानव को तत्पर रहना चाहिए। परन्तु जहां तक जान करके सदुपयोग करता है वहां विज्ञान सार्थक है। और जहां विज्ञान द्रव्य की लोलुपता में आ जाता है, वहीं विज्ञान का दुरुपयोग होता है और वही विज्ञान मानव को अन्धकार में ले जाता है। इस अन्धकार का मूल कारण है विज्ञान का दुरुपयोग है।

इसी प्रकार आधुनिक यन्त्रों का निर्माण हो रहा है और उनका दुरुपयोग भी हो रहा है। उसी विज्ञान से जिस प्राणी ने विज्ञान को जाना नहीं, प्राणी से प्राणी का ह्रास हो रहा है और ह्रास होने से उसकी आभा नष्ट हो रही है। इसके मूल में क्या है ? सब से प्रथम तो यह है कि इन्होंने धर्म को नहीं जाना। उन्होंने धर्म की पोथियों को नहीं जाना, वैदिक साहित्य के ऊपर विचार विनिमय करते हुए मानव के विचार ले करके उनमें जो अशुद्धियां मिली, उनको उसी प्रकार स्वीकार करना ही यह अन्धकार है और यह अन्धकार किस काल तक रहेगा ? यह अन्धकार देखो विज्ञान के काल तक रहेगा। एक समय

आता है जब विज्ञान बलवती होकर के मानव मानव को नष्ट करने वाला बन जाता है। यह परम्परा से है 'अमृतम' । मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे कई काल में वर्णन किया कि हे बेटा 'अब्रहा कृत्म' । मुझे यह वर्णन करते हुए कहा था कि यह संसार अग्नि के काण्ड में जा रहा है और यह अग्नि जो विशाल प्रचण्ड होने जा रही है और भी विशाल अग्नि प्रचण्ड होने वाली है। विचार आता रहता है, इस अग्नि के लिऐं प्रायः इसके मूल में उनका धर्म है। क्योंकि इसे हम रूढ़ि कहते हैं और इसे वह धर्म कहते हैं। धर्म और रूढ़ि में अन्तर्द्वन्द माना गया है। धर्म कहते हैं उस तत्व को जिससे आत्मा बलवती होती है और रूढ़ि उसे कहते हैं जो अशुद्ध है। उसको भी हम स्वीकार कर रहे हैं जो अशुद्ध है जबकि शुद्ध को स्वीकार करना हमारा कर्तव्य है। परन्तु अशुद्धियों को जो नहीं त्यागता है और केवल यह विचारता रहता है कि यह प्राणी अमुक सम्प्रदाय का है इसे नष्ट करो, अमुक सम्प्रदाय का है यह हमारे लिए हानिकारक है। उनके वास्तविक विचारों को न श्रवण करना, उनके सम्पर्क में न आना, यह उनकी मानवीयता का ह्रास होने जा रहा है।

विचार आता रहता है कि मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह वर्णन करता हूं कि आधुनिक जो यह काल चल रहा है यहां बहुत से भगवान बन करके आ गए हैं और वह प्रभु बन करके आ गए हैं। औ जो मानव उन्हें यह कहते हैं कि तुम भगवान या प्रभु नहीं हो तो वह मानव को नष्ट कर सकते हैं। इसी प्रकार मैं यह विचारता रहता हूं कि जब एक व्यक्ति को मानव को भगवान की उपाधि प्रदान की जाती है और जब उनसे हम जैसे प्रश्न करते हैं कि भगवान के गुण क्या है, परमपिता परमात्मा के गुण क्या है तो वह गुणों का उत्तर नहीं देते हैं, कहते हैं 'अहम ब्रह्मअस्मि' । और गुणों में गुण बरतते रहते हैं और गुणों का भी ज्ञान नहीं होता कि गुणों में गुण कैसे बरतते हैं। देखो 'गुणम् ब्रह्म व्रतौ'' जब गुणों की चर्चा आती है तो उनका भी उत्तर उनसे नहीं बन पाता।

जब हम यह प्रश्न करते हैं कि सृष्टि की रचना के मूल का कारण क्या है तो मोहम्मद के मानने वाले यह कहते हैं कि हमें तो उस वृक्ष के फलों को प्राप्त करना है, उनके पत्रों को गिनने से हमें कोई सम्बन्ध नहीं है। जब यह उत्तर देते हैं तो मानवीयता का ह्रास हो गया है और मानवीयता का ह्रास होकर

के उसी रूढ़िवाद में संसार पनप रहा है। उसके मूल में है कि एक मानव मानव के ह्रास में जा रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से जब यह प्रश्न करता रहा हूं कि प्रभू ! कितने समय में इनके अज्ञान का ह्रास हो सकता है तो मेरे पूज्यपाद गुरूदेव समय समय पर अपनी घोषणा करते रहे हैं और भी महापुरुष हुए हैं जो घोषित करते रहे हैं इस सम्बन्ध में। परन्तु मैं तो यह उद्गीत गाने जा रहा हूं कि इसके मूल में है क्या ? यह स्वार्थपरता है, न तो संग्राम के गर्भ में राष्ट्रवाद है और न किसी की रक्षा का प्रश्न है। यह प्रश्न है द्रव्य को नष्ट करने का और परमाणु से और परमाणु वाद से मानव का ह्रास करना। विचार आता रहता है जब मैं वायुमण्डल में प्रवेश करता हूं तो वायुमण्डल में लोहतट समुद्रों से वह वायु की आभा में रमण कर गए हैं और एक समय आने वाला है कि वायुमण्डल में उन परमाणुओं का प्रयोग भी होने वाला है जिससे मानव श्वास लेने पर ह्रास्ता को प्राप्त हो जाएगा। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह वर्णन करता रहता हूं कि यह समाज अज्ञानता के मूल में प्रवेश हो गया है। क्योंकि राष्ट्रवाद में तपस्या न रहने का कारण और विवेकी पुरुष राष्ट्र में न होने का कारण यह है।

देखो जब राजा के यहां राष्ट्रवाद को चलाने के लिए जब कोई विवेकी ब्रह्मवेता और राजा स्वयम् ब्रह्मवेत्ता और उसका पुरोहित ब्रह्मवेत्ता नहीं होता तो उसके राष्ट्र में अभिमान की मात्रा बलवती हो जाती है और अभिमान होने से एक मानव मानव का ह्रास करने लगता है। राजा का तपस्वी न होना ही यह अज्ञानता है, अन्धकार है। इसी अन्धकार की प्रतिभा में जब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को यह वर्णन कराता रहता तो पूज्यपाद बड़े प्रसन्न होते। परन्तु उन्होंने कई कालों में वर्णन किया कि राष्ट्रवाद की चर्चाएं बड़ी गम्भीर हैं, बड़ी विशुद्ध हैं। परन्तु जो वर्तमान काल चल रहा है, इसमें न प्रजा ही शुद्ध है और न राजा ही शुद्ध है। क्योंकि दोनों स्वार्थपरता में रत्त हो रहे हैं। स्वार्थपरता में रत्त होकर के स्वार्थ में ईश्वरवाद को ले लिया जाता है। जब ईश्वर वाद को स्वार्थ में ले लेते हैं तो वही जो ईश्वरवाद की तरंगें हैं वही इसका ह्रास करने के लिए तत्पर हो जाती हैं।

मुझे स्मरण आता है मैं विचार करता हूं जिन महापुरुषों ने मानवता की

चर्चाएं की हैं जैसे हमारे यहां महात्मा नानक की चर्चाएं आती हैं। उनकी चर्चाएं बड़ी विचित्र हैं। क्योंकि वे दर्शनों की चर्चाएं हैं, उपनिषदों की चर्चाएं हैं, वेद में जो विचार आते हैं वह इनके विचारों में हैं। परन्तु वे इन के मानने वाले उसे राष्ट्रवाद में परिणत करके कहते हैं हम अमुक राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं और उसी में हमारा ही गोर-वृति (अधिकार) हो, उसमें कोई अन्य भाषा न हो अथवा उसमें कोई भी द्वितीय विचार न आ जाए। यह हमारे गुरू नानक की पवित्र देन है। देखो यह मानवता तो क्या, यह राष्ट्रवाद भी नहीं। इसको हम ह्रासवाद कहते हैं, इसको हम मानवता नहीं कहते, इसको हम अमानववाद कहते हैं। और क्यों कहते हैं ? क्योंकि जब एक प्राणी दूसरे से घृणा करता है तो वहां व्यापकवाद नहीं रहता और जहां व्यापकवाद नहीं रहता वहां संकीर्णता की आभा में रत होकर के मानव स्वतः अपने में नष्ट होता रहता है।

विचार आता रहता है। पूज्यपाद गुरूदेव से मैंने कई काल में वर्णन किया कि मानव मानव को ह्रास के मार्ग पर ले जा रहा है। आज मैं इस संदर्भ में विशेषता में नहीं ले जाना चाहता हूं। केवल एक मानव, एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदायों का शत्रु बना हुआ है, एक भगवान दूसरे भगवान का शत्रु बना हुआ है। अरे जहां देखो एक ईश्वरवाद, प्रभु की चर्चाएं आती हैं कि प्रभु हमारे अंग संग रहने वाला है, हमारे अन्तर्हृदयों में जो परमपिता परमात्मा विद्यमान रहता है वह एक दूसरे का शत्रु क्यों बनेगा। क्योंकि शत्रुता केवल राष्ट्रवाद के ऊपर है। शत्रुता केवल द्रव्यवाद के ऊपर है। ईश्वरवाद के ऊपर कोई शत्रुता नहीं। मैंने पुरातन काल में केवल यही देखा था कि आगे संसार की प्रतिभा एक दूसरे में जहां महात्मा कागभुषुण्डी जैसे ऋषि हुए, जहां दुर्वासा जैसे ऋषि हुए उन स्थलियों पर भयंकर संग्राम हो रहा है। वहां संग्राम की प्रतिभा अब तक हो रही है और वह क्यों हो रही है ? क्योंकि उसमें राष्ट्रवाद है मानवता नहीं है, मानवता न रहने से काल देखो प्राणी प्राणी को विनाश के मार्ग पर ले जा रहा है। और यह तब तक रहेगा जब तक केवल रूढ़िवाद रहेगा या राजा अपने में नहीं विचारेगा कि मैं अपने में रूढ़िवादी नहीं बनना चाहता हूं। वह ब्रह्मज्ञानी ही निर्भय होता है और ब्रह्मज्ञानी जब निर्भय होता है तो वह अपनी वार्ता प्रकट कर देता है। राजा को चाहिए कि वह ब्रह्मज्ञानी हो, ब्रह्मवेत्ता हो

जिससे वह ब्रह्मज्ञान का निर्णय करने वाला हो। एक न्यायाधीश अपनी न्यायशाला में विद्यमान होकर के न्याय कर रहा है परन्तु वह न्याय करता हुआ भी आकृतियों में रत्त हो जाता है और यदि वह न्यायवेता अपने में यह स्वीकार करता है कि मैं ब्रह्मज्ञान से इसका न्याय करूं और ब्रह्मज्ञान की आत्मा क्या कहता है तो उसका न्याय यर्थाथ बन करके राष्ट्रवाद को ऊंचा बनाता है और मानव समाज को ह्रास होने से वह बचा लेता है। इसमें न्याय और न्याय प्रियता आ जाती है, बिचित्रता आ जाती है।

तो मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को यह वर्णन करा रहा हूं कि यह जो समाज चल रहा है, यह जो संग्राम चल रहा है, यह मानव मानव में द्रव्य की लोलुपता के ऊपर मानव मानव को नहीं विचार रहा है। इसके मूल में विज्ञान है। यह मैंने अपने पूज्यपाद गुरूदेव को वर्णन कराया कि विज्ञान का ह्रास हो रहा है और यन्त्रों के रूप में जो विज्ञान है वह मानव मानव का विनाश कर रहा है। इसके मूल में क्या है ? इसके मूल में धर्म कहते हैं परन्तु मैं तो उसे रूढ़ि कहता हूं और वह रूढ़िवाद ईश्वर के नाम पर रूढ़ि है। अरे ईश्वर के नाम पर उन रूढ़ियों को त्याग देना चाहिए। यह राष्ट्र का कर्तव्य है कि राजा स्वत: अपने में तपस्वी और ब्रह्मवेत्ता बन करके अपना न्याय दे। जैसे परमपिता परमात्मा का जो न्याय है वह सर्व सत्य कहा जाता है। उसी न्याय की भूमिका बना कर के राष्ट्रवाद को ऊंचा बनाता है। इसीलिए मानव को अपने में महानता की वेदी पर रत्त रहना चाहिए।

मैं विशेषता देने नहीं आया हूं। केवल विचार विनिमय यह कि हमारे यहां जो विज्ञान का दुरुपयोग हो रहा है इस वर्तमान के काल में, इस विशाल विज्ञान के दुरुपयोग में मानव की चरित्रता और मानवीयता का ह्रास होता जा रहा है अथवा ह्रास हो गया है। जहां ब्रह्मचारियों को नैतिक, आध्यात्म और शारीरिक शिक्षाओं का विद्यालयों में प्रदर्शन होता रहा है और वहां राजा भी समय समय पर अपना समय देता रहा है तो उससे रूढ़ि का विनाश हो जाता है। रूढ़ियों का यदि विनाश होना है तो वह विद्यालयों से होगा, यह ब्रह्मवेत्ता आचार्यों से होगा। इसमें रूढ़िवाद को सम्माप्त कर राजा ब्रह्मवेता और ब्रह्मवेता गुरू बन करके ही विवेकी पुरुष राष्ट्र को उन्नत बना सकते हैं।

विचार आता रहता है मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है। मैं पूज्यपाद गुरूदेव को वर्णन कराता रहता हूं। इसीलिए देखो आज का विचार क्या है कि यह जो संग्राम चल रहा है यह स्वार्थपरता है। आज स्वार्थपरता का एक मूल है उसमें 'ह्रासत्म व्रही' उनका अभिमान है। क्योंकि अभिमान में अन्धकार है और अन्धकार में ही आस्था का समाज समाप्त हो रहा है। इसीलिए अभी कुछ समय अज्ञानता चलती रहेगी, गमन करती रहेगी। समय आयेगा जब यह अन्धकार, अज्ञानता अपने में शान्त हो जाएगा। तो अपने में "ब्रह्मणा ब्रहवे कृत्म" जब इसका ह्रास हो जाएगा तो अपने में मानव मानव की वृत्तियों में रत्त हो जाएगा। विचार आता रहता है मैं इस संदर्भ में न जाता हुआ विचार केवल यही दे रहा हूं कि हमारे यहां महर्षि व्यास, महर्षि जमदग्नि, और जहां देखो ऋषि मुनियों की स्थली रही है, राम की तपस्वी स्थली रही है, कृष्ण की तप स्थली रही है।

यह जो हमारा राष्ट्र है पृथ्वी मण्डल पर यह अपने में रूढ़िवाद को त्याग दे और यह ब्रह्मवेता बन करके अध्यात्मवादी बने। और राष्ट्र में यहां मोहम्मद के मानने वालों को भी यह शिक्षा दी जाए कि तुम भी मानवता में रत्त हो जाओ। एक प्राणी के रक्त के पिपासी जितने बनते चले जाओगे उतना ही तुम्हारा पाप बढ़ता रहेगा और जब पाप बलवती हो जायेगा तो उतना ही तुम्हारा विनाश हो जाएगा। विचार आता रहता है, मैं यह उच्चारण करता रहता हूं, जब गृह गृहों में विद्यमान हो करके और सम्प्रदाय के कारण देखो एक सम्प्रदाय के प्राणियों को प्राणी नष्ट कर रहा है, क्योंकि वही प्रभु के राष्ट्र में एकाधिकरण है और समाज में उसका द्वितीय पग स्वार्थता में है और वही स्वार्थ अभिमान में परिवर्तित हो करके वही समाज के विनाश की आभा में रत्त हो जाएगा।

मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह उच्चारण करने के लिए आया हूं, विचार केवल यही है कि हम अपने में अभिमान न करें और अभिमान जितना आता रहेगा उतना ही अज्ञान आएगा। जितना अज्ञान आएगा उतनी उसमें घृणा आ जाएगी और जितनी घृणा आ जाएगी उतना ही मानव मानव का विनाश करने के लिए तत्पर हो जाएगा। और जब विज्ञान से वह विनाश के मार्ग पर चला जाता है तो उसके पाप का फल परिपक्व बन जाता है और उसमें

स्वतः वह नष्ट हो जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मुझे बहुत सी वार्ताएं प्रकट कराते रहते हैं और हम उनके वाक्यों को श्रवण करते रहते हैं।

आज का विचार विनिमय क्या है ? मैं अपने विचारों को विशेष महत्व नहीं दूंगा। केवल यही उच्चारण करना है कि हम अपने में ही नाना प्रकार के जो भगवान बने हुए हैं, उन भगवानों से कहो कि तुम नाना भगवान न बन करके एक ही प्रभु की पूजा करने वाले बनो। और एक ही प्रभू की पूजा करके यह रूढ़िवाद समाप्त होना चाहिए। यह जो नाना प्रकार के मन्त्रार्थ दिये जाते हैं यह मन्त्रार्थों के गर्भ में राष्ट्रवाद होता है। यदि इसके गर्भ में अध्यात्मिकवाद हो तो मुझे कोई दुःख नहीं होता। परन्तु इसके गर्भ में राष्ट्रवाद होता है और यह राष्ट्रवाद की उत्पत्ति उस समय होती है जब मानव अज्ञानता में आ जाता है, जब अनुशासन की हीनता आ जाती है। उस समय अनुशासन की आवश्यकता होती है। तो वेद के माध्यम से अनुशासन का जन्म होता है। और वह अनुशासन जब इसके ऊपर अनुशासन की हीनता हो जाती है, ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की आभाओं का जन्म हो जाता है तो मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह वर्णन करा रहा हूं कि हे मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ! यदि आप कल मुझे समय दें तो इससे आगे भी चर्चाएं कल प्रकट कर सकूंगा कि नाना प्रकार के भगवान की चर्चाओं में क्या क्या उनके गर्भ में विद्यमान रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव तो इतना जानते नहीं परन्तु देखो नाना रूढ़ियों में क्या क्या होता है उन रूढ़ियों की चर्चाएं मैं कल विशेष कर सकूंगा। आज तो मैं अपने विचारों को यहां विराम दे रहा हूं कि प्रत्येक मानव मानव का ह्रासी न बने। और यह बनता रहेगा क्योंकि सम्प्रदायों का अपने में पापाचार का अस्त्र परिफूल जब बन जाता है तो इस प्रकार के क्रिया कलाप होते रहते हैं। तो आज का विचार विनिमय क्या ? मैं विचार दे रहा हूं कि राजा को ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए। राजा ब्रह्मवेत्ता हो और ब्रह्मनिष्ट बन करके अपने में अपनेपन को विचारता रहे। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव से 'अमृतम' मैं क्षमा चाहता हूं। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट कर सकूंगा।

मेरे प्यारे ऋषिवर, अभी अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार दिए और उन विचारों में उनके गर्भ में बड़ी मार्मिक चर्चाएं हैं, मानो मानव

कैसे उन्नत हो सकता है। तो आज मैं बेटा अपने में बड़ा हर्ष कर रहा हूं कि कल भी महानन्द जी को समय दिया जाएगा। आज का विचार विनिमय क्या ? इनके विचारों में अध्यात्मवाद न रह करके आभानित होती है। आज का विचार अब यहां सम्पन्न होने जा रहा है। समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। अब वेदों को पठन पाठन होगा। वेद पाठ।।

ॐ

धर्म से ज्ञान एवं विज्ञान तथा सन्तति

स्थान : लाक्षागृह, वरनावा, मेरठ
दिनांक : २३.२.१९९१

जीते रहो।

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हम ने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है अथवा परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के और वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ, जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। क्योंकि वह सीमा से रहित है और वह सीमा में आने वाला नहीं है। इसीलिए हमारा प्रत्येक वेद का मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गान गाता रहता हैं

एक एक वेद मन्त्र में बेटा ज्ञान और विज्ञान की महिमा का प्रायः हमें अपने में दर्शन होता रहता है। तो आज का हमारा वेद मन्त्र नाना प्रकार की प्रतिभाओं में हमें ले जा रहा है और हमें नाना प्रेरणाएं दे रहा है। क्योंकि मानव परम्परा से ही प्रेरणा का स्रोत बना रहा है और प्रेरणा से ज्ञान प्राप्त करता रहता है और प्रेरित होता रहता है और संसार की नाना प्रकार की वृत्तियों में वह रत हो जाता है। तो आज का हमारा वेद मन्त्र हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है क्योंकि हम उसी से प्रेरित रहते हैं। हमारे आचार्यों ने बेटा, पुरातन काल में, मुझे वह काल स्मरण आता है, जब नाना प्रकार के यागों का चयन हमारे यहां प्रचलित रहा। जहां महात्मा, महर्षि जमदग्नि, प्रव्हान, सिल्क सब विद्यमान होकर के अपने में याग के ऊपर विचार विनिमय करते रहते। मैं ने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय कराया कि ऋषि मुनियों का जो अध्ययन

रहा है वह बड़ा विचित्र रहा है। उद्दालक गोत्र में जो शिकमकेतु उद्दालक मुनि थे उनका जो अध्ययन रहा वह बड़ा विचित्र रहा और महर्षि भारद्वाज का भी इस याग के सम्बन्ध में और याग के माध्यम से जो ज्ञान और विज्ञान की उपलब्धियां उन्हें होती रही हैं, उनका बड़ा अन्वेषण होता रहा है, अनुसन्धान होता रहा है और लोक लोकान्तरों की प्रवृत्तियों को अपने में दृष्टिपात करते रहे हैं।

तो बेटा, आज का हमारा वेद मन्त्र हमें क्या कह रहा है "रूढन्म बह्मणा बिडनम दिव्यम व्रहवा कृत्य" एक एक शब्द अग्नि की धाराओं पर विद्यमान होकर के वह द्यौ में प्रवेश होता रहता है। तो ज्ञान और विज्ञान हमारे यहां बड़ा एक अनूठा माना गया है। विचार वेताओं ने इसके ऊपर अन्वेषण किया है। तो आज का हमारा वेद मन्त्र यह कह रहा है कि ऋषि मुनि अपने में एकान्त स्थलियों में विद्यमान होकर के और परमपिता परमात्मा की यह जो भव्य यज्ञशाला है इसके ऊपर अन्वेषण किया करते और यही यज्ञशाला मानवीय रूप में जो प्रायः हमें दृष्टिपात आती है इसको भी उन्हों ने प्रायः दृष्टिपात किया। और इसके ऊपर ऋषि मुनियो ने अन्वेषण किया है।

तो बेटा, मैं तुम्हें एक वेद मन्त्र में ले जाना चाहता हूं। वेद मन्त्र कहता है "सम्भवा व्रहवे वाचाम यागाम वरुणम वृष्टि यागाम रूद्र भागा" नाना प्रकार के यागों का चयन हमारे प्रायः वैदिक मन्त्रार्थ में होता रहता है। जैसे मुनिवरो, वाजपेयी याग है, अग्निष्टोम याग है, वृष्टि याग है, अश्वमेघ याग है और जिसे हम गो मेघ याग कहते हैं और उसी गो मेघ याग के संदर्भ में अजामेघ याग का भी प्रायः वर्णन होता रहता है और विष्णु याग का भी वर्णन है। हमारे यहां नाना प्रकार के यागों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में होता रहा है। तो मैं इन यागों में तुम्हें सूक्ष्म से वाक्यों का परिचय देना चाहता हूं। अग्निष्टोम का अभिप्राय यह है कि "अग्नम ब्रहवे व्रत्म देवाः" तो व्रति बन करके मानव जब अग्न्याधान करता हुआ अग्नि की तीव्र धाराओं (शिखाओं) में अपने सूत्रों का वह दर्शन करता रहा है। तो वह हमारे यहां अग्निष्टोम याग है। इसमें बेटा, 'अग्नय ब्रहवे कृत' कहलाता है।

एक "अग्नि व्रत्म अश्वम ब्रह्मे कृताः देवत्राहम" देखो एक वाजपेयी याग

होता है और वाजपेयी याग में 'वाचाय' अपनी वाणी से जब वेद मन्त्रों का उद्‌गीत गाता है वह हृदय से, वाणी से जब वेद मन्त्रों का समन्वय होता है और अग्नि की जो उसमें पुट लग जाती है तो वह ऊर्ध्वा में गान गाता हुआ और वेद मन्त्रों से हूत कर रहा है। अग्नि को देवताओं को मुख स्वीकार करके और "वेद वाचाम भू वरुणम ब्रह्मा:'' अग्नि की धाराओं (शिखाओं) पर विद्यमान हो करके साकल्य मधुप्रहा और बर्चोसि बन करके वायु मण्डल में वह महा तत्वों में रमण करने के लिए तत्पर हो जाता है। उस द्यौ से जिसका समन्वय रहता है। तो इस विषय को मैं गम्भीर न बनाता हुआ यह कि वाजपेयी अग्निष्टोम यागों का प्राय: हमारे वैदिक साहित्य में वर्णन होता रहा है।

इसी प्रकार जैसे धनुर्याग है। धनुर्याग में भी आचार्य "यागाम ब्रह्मणे'' इस प्रकार के मन्त्रों का उद्‌घोष करता है और याग करता है। और याग करने के पश्चात इसमें जो परमाणुवाद है उसके ऊपर अनुसन्धान करता है, अन्वेषण करता है। तो यह धनुर्याग बन जाता है। तुम्हें यह प्रतीत होगा कि धनुर्याग में महर्षि विश्वामित्र का आचार मुझे स्मरण आता रहता है। जब वे धनुर्याग करते थे तो दो सौ (२००) ब्रह्मचारी वेद का अध्ययन करते और विज्ञान की धाराओं में रत रहते और वे इसी से अपने में रत्त रहते। धनुर्याग का अभिप्राय: यह कि याग करना अर्थात अग्नि में हूत करना और उसमें जो साकल्य है, परमाणुवाद है उन परमाणुओं को एकत्रित करके उसी प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करना। इसे हमारे यहां धनुर्याग कहते हैं।

एक याग का नाम हमारे यहां वृष्टि याग कहा जाता है। वृष्टि याग में कुछ मन्त्रों का उद्‌घोष होता है और वह "शम्भु वरूणम ब्रह्मा वरूणुस्ताम व्रत्येन देव: प्रवाहा कृति देवत्वम लोका:'' इन वेद मन्त्रों का उद्‌घोष करता हुआ आचार्य अग्नि के मुखारविन्द में अपना साकल्य देता है, अपनी भावना देता है, अपना नृत्य देता है, अपनी हृदय की पुकार और वेदना देता है। तो जिस समय वह याग करता है तो वह वृष्टि याग बन जाता है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महाराजा अश्वपति के यहां वृष्टि याग का वर्णन होता रहा और वृष्टि याग जब महर्षि वैश्यमपामम उनके याग में सम्मिलित होते, उनके याग में रमण करते और महर्षि विभाण्डक मुनि का बड़ा अध्ययन था इस

सम्बन्ध में। तो नाना प्रकार का चरू बना करके और वेद मन्त्रों का उदघोष करते रहे। और वृष्टि याग के मन्त्रों का जब उच्चारण करते हुए वह स्वाहा कहते तो मेघों से वृष्टि प्रारम्भ हो जाती और उस वृष्टि से वह अकाल प्रवृत्ति समाप्त हो जाती।

मुझे वह काल स्मरण है बेटा, राजा जनक के यहां नाना प्रकार के यागों का चयन होता रहा। जहां आध्यात्मिक याग का चयन होता रहा वहां अग्निष्टोम याग का भी समावेश एवं अन्य यागों का भी चयन होता रहा है। तो वह वेद मन्त्रों का उद्घोष करते और उसमें चरू से स्वाहा उच्चारण करते तो उसे वायुमण्डल में भरण कर देते जिससे वायुमण्डल दूषित न हो जाए। वह महान बन कर के उसमें हूत करना और हूत करने के पश्चात वह महान वेद मन्त्रों का उद्गीत गाते रहते और उसमें कुछ वेद मन्त्र हैं उनको बेटा हम भी उच्चारण करते रहे हैं। और वह वेद मन्त्र "व्यक्तम ब्रह्मा वरूणम ब्रहवे कृत्म वसुत्म ब्रह्मे व्रहा: सुतत्म अव्रति देवा:'' इस प्रकार के वेद मन्त्रों का यजमान के द्वारा उद्गीत करवाया जाता और पुरोहित उद्गाता उद्गीत गाता है और उद्गीत गाता हुआ उन परमाणुओं को जन्म दे देता है। क्योंकि साकल्य चरू इसी प्रकार का और यजशाला भी उसी प्रकार की निर्मित की जाती है।

तो बेटा, यह हमारे यहां नाना प्रकार के यागों का चयन वैदिक साहित्य में होता रहा है। इसी प्रकार पुत्रेष्टि याग होता है। पुत्रेष्टि याग का अभिप्राय यह है कि यजमान यदि पुत्रेष्टि याग करने के लिए तत्पर है तो उसका निदान होता है और उसको औषध दी जाती है, भयंकर वनों में से औषध ला कर के उसे प्रदान की जाती है और ब्रह्मवर्चोसि का पालन करना, ब्रह्मवर्चोसि बनना, वह वर्षों इसी प्रकार व्यतीत होते। उसके पश्चात वह ब्रंह्मा यजमान का सहायक बन करके चरू बनाता है और चरू बना करके उसी प्रकार की औषध एकत्रित करके अग्नि में हूत कर रहा है। और जब वह निष्ठा से, मन कर्म वचन से हूत करता है तो उन परमाणुओं का जन्म हो जाता है जिन परमाणुओं से बेटा महान पुत्रों का जन्म होता है। पुत्रेष्टि याग का सम्बन्ध ब्रह्म से रहता है। क्योंकि संसार में परमपिता परमात्मा ने उग्रवाद से इस संसार को जन्म दिया है और उग्रवाद से उग्रवाद को समाप्त कर दिया है। इसलिए यह जो

महान जगत है यह उग्रवाद से प्रेरित रहता है। मानो उसी में रत रहता है और उग्रवाद ही संसार की उत्पत्ति का मूल बनता रहता है। आज बेटा, इस संदर्भ में मैं तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूं। यह तो मैं विचारों के वन में जा रहा हूं। विचार केवल यह है कि उद्गीत गाना है कि यह पुत्रेष्टि याग है।

हमारे यहां एक अश्वमेघ याग है। मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने इस से पूर्व काल में प्रकट किया और मैं भी वाक्यों पर चला जाता हूं कि राजा को यदि अपने राष्ट्र को उन्नत बनाना है तो वह अश्वमेघ याग करे। क्योंकि अश्व नाम राजा का है और मेघ नाम पूजा का है। "मेघाम प्रजाम भू वरूणम ब्रह्मे वाचसुतम ब्रह्मा लोकाम वरूणम देखो वरसचीसुत्म मसत्वाम भू असत्वाम रूद्रा असत्वाम् रोडस कृत्य देवत्वाम" इन वेद मन्त्रों का उद्गीत गाते हुए वह राजा अपने राष्ट्र में याग करता है जिससे प्रजा की जन भावना, प्रजा का जन हृदय और प्रजा की श्रद्धा, उसमें श्रद्धा की पुट लग कर हृदयग्राही बन करके वह याग हवि (महान) बन करके और वह मानव समाज को जन जन से ऊंचा बनाता है और वह राजा का राष्ट्र पवित्र बन जाता है।

मेरे प्यारे ! आचार्य कुल में जब ब्रह्मचारी प्रातःकालीन नैतिक शिक्षा में विद्यमान होते हैं तो आचार्य कहते हैं "अस्वाम भू वरूणम ब्रह्मे" हे ब्रह्मचारियो, नयौदा में वेद मन्त्रों का तुम अध्ययन करो और अध्ययन करते हुए अपने में अपनेपन को विचारो और तुम अध्ययन करते हुए राष्ट्रीयता का गान गाने लगो। राष्ट्रीय कहते हैं अनुशासन को और बिना अनुशासन राष्ट्र का कोई अभिप्राय नहीं है, राष्ट्र का अपना कोई महत्व नहीं होता यदि यह अनुशासित नहीं है। प्रजा और राजा दोनों ही अनुशासित हों तो राष्ट्र है और यदि अनुशासित नहीं तो राष्ट्र में आगे से हिंसा बन जाती है। तो बेटा, देखो मैं ने बहुत काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा कि राजा कहते हैं जो अपने को, अपनों को और प्रजा को अनुशासन में लाता है। जैसे विद्यालय उसी को कहते हैं जो अपने को और ब्रह्मचारी को अनुशासित बना देता है।

ब्रह्मचारी वही है जो अनुशासित रहने वाला, प्रभु का गुणगान गाता हुआ ब्रह्मवर्चोसि बन जाता है। ब्रह्मचारी वही है जो प्रत्येक श्वास का मनका बना

करके वह ब्रह्म सूत्र में पिरो देता है। जैसे ब्रह्मचारी वही है जो ब्रह्म की प्रतिभा को जानने के लिए सदैव तत्पर हो जाता है। तो विचार क्या कि वह अपने में महान कहलाता है, पवित्रतम कहलाता है। तो विचार आता रहता है कि हमें वेद का मन्त्र क्या कहता है ? वेद का मन्त्र यह कहता है कि परमपिता परमात्मा का यह जो जगत है यह बड़ा अनूठा है, बड़ा विचित्र है, इसके ऊपर मानव अपनी आभा में परिणत रह जाता है। तो विचारवेत्ताओं ने यही कहा है कि इसके ऊपर विचार वेता बनो। मन, कर्म, वचन से प्रभु को समर्पित करते हुए ब्रह्म में समर्पित हो जाओ और ब्रह्म में रत हो करके वेद का गान गाने लगो।

तो मुनिवरो ! आज मैं दूरी न चला जाऊं। विचार केवल यह कि वह याग करता है और आचार्य अपने ब्रह्मचारियों को अनुशासित करता है। और अनुशासन करके स्वयं से अनुशासित होता है और जब स्वयं अनुशासित नहीं होगा तो कोई भी उसके संरक्षण में रहने वाला अनुशासित नहीं हो सकता। राजा का राष्ट्र जब हिंसक बनता है जब उसमें अति उग्रवाद आता है। जब राजा के मन में दूसरों के श्रृंगार को, दूसरों के द्रव्यों को अपने में एकत्रित करने की भावना बन जाती है तो वह राष्ट्र अग्नि के मुखारविन्द में परिणत हो जाता है। यह मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था। कल मेरे पुत्र महानन्द जी यह उच्चारण कर रहे थे, आधुनिक काल की चर्चाएं कुछ प्रकट कर रहे थे। आधुनिक काल में ही मैं यह कहता रहता हूं कि प्रत्येक मानव को अपनी प्रवृत्तियों पर अनुशासित रहना चाहिए। सब से प्रथम बाह्य जगत उसका अनुशासित हो और आन्तरिक जगत भी अनुशासित हो। आन्तरिक जगत से अनुशासन करने से प्रभु का मिलन होता है, प्रभु के विज्ञान का मिलन होता है और वाह्य जगत के अनुशासन से वाह्य जगत ऊंचा बनता है और वाह्य जगत में समय समय पर वृष्टि होती है और समय समय पर बुद्धिमान अपना उद्गीत गाते रहते हैं। विवेकी पुरुषों द्वारा अश्वमेध याग करने वाला राजा हो। राजा के यहां जब अश्वमेध याग करने वाले पाण्डित नहीं रहेंगे तो वह पाण्डित्य को प्राप्त नहीं हो सकेगा। राष्ट्र में विवेकी पुरुष होने बहुत अनिवार्य हैं, क्योंकि राष्ट्र को विवेकी पुरुष ही ऊंचा बनाते हैं, राष्ट्र को वे सजातीय बना देते हैं। क्योंकि वे राज्य में ऊर्ध्वा होकर के अपने में गमन करते

रहते हैं और वहां जो अपनी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सर्वत्रता को अनुशासन में लाकर अभ्यस्त होते हैं तो राजा का राष्ट्र पवित्र बन जाता है। आज मैं बेटा, राष्ट्र के ऊपर कोई चर्चा देना नहीं चाहता हूं। केवल परिचय देना है।

देखो नाना प्रकार के यागों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहता है। नाना प्रकार के याग जो मानवीयत्व में परिणत रहता है तो मेरे पुत्रो मैं विचार तुम्हें यह दे रहा हूं, यह विचार देने के लिए आया हूं कि हमारे यहां नाना प्रकार के जो याग हैं उनके उसी प्रकार के मन्त्र हैं और उन मन्त्रों का उद्घोष करने वाले मानो उसी प्रकार का अनुशासन है और उसी प्रकार का धन . और मन मानवीय जो भावना है उससे ओत प्रोत होकर के राष्ट्र और समाज को उन्नत बनाता है। तो यह रूढ़िवाद नहीं कहलाता। मैंने अपने पुत्र से कई काल में वर्णन करते हुए कहा कि राजा को, राष्ट्र को ब्रह्मवेता होना चाहिए और ब्रह्मवेता जब तक नहीं होगा तब तक वह राष्ट्र को ऊंचा नहीं बना सकेगा क्योंकि राष्ट्र रसातल को चला जाएगा। इसी प्रकार ब्रह्मवादी बन करके वह (राजा) अपने में निर्णय दे सकता है। मैं बहुत पुरातन काल की वार्ता प्रकट करा रहा हूं। देखो रावण ब्रह्मवेता न हो करके रावण के यहां नाना प्रकार की ईश्वरीय नाम पर राज्य में रूढ़ियां बनी। उस रूढ़ि के कारण रावण का विनाश हो गया था। तो इसी प्रकार जो ईश्वर के नाम पर रूढ़ियां बनती हैं वह रूढ़ियां, जैसा महानन्द जी ने कहा, प्रायः नहीं होनी चाहिएं। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे, उनके कुछ शब्द रह गए थे।

ऋषि महानन्द जी का प्रवचन

"ओ३म देवाम भद्रम भूःवरूणम त्रास्ताम भू प्रथम देवाः" मेरे पूज्यपाद गुरूदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल और भद्र समाज, अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरूदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। उनकी मानसिक भावना यह रहती है कि एक शब्द में ही सर्वत्र वेदों का ज्ञान उद्गीत गाता रहूं और एक एक याग का वर्णन करना उनके लिए एक मूलक कहा जाता है। अब यह विचारना हमारे लिए होता है कि हम क्या उच्चारण करें। क्योंकि जहां यागों का चयन मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अभी अभी कुछ वर्णन शैली में लाए परन्तु

हमारा यह विचार चल रहा है कि समाज और राष्ट्र और नाना प्रकार की जो वृतियां मानव की बन गई हैं उनसे क्या बनेगा। मैं ने बहुत पुरातन काल हुआ अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह प्रश्न किया था कि प्रभु इस संसार का क्या बनेगा ?

तो पूज्यपाद गुरूदेव ने यह कहा कि जब समाज में विज्ञान का दुरुपयोग होने लगता है, तो उस समय राजा का राष्ट्र अन्धकार में चला जाता है और जिस काल में विज्ञान का सदुपयोग होता है तो राष्ट्र उन्नत होता है। विज्ञान होना चाहिए परन्तु विज्ञान का सदउपयोग हो। जहां मेरी पुत्रियों का नग्न चित्रण किया जाता है अथवा वहां यदि मेरी पुत्रियों के महान चरित्रों का बखान होना चाहिए तो राष्ट्र और समाज दोनो ही उन्नत बनेंगे। और यदि विज्ञानवेत्ता जब राजा के राष्ट्र में विज्ञान का दुरुपयोग नृतिका इत्यादि करेंगे तो उससे छात्र बल, छात्रा बल दोनों ही में आलस्य और प्रमाद की बलवती हो जाती है। समाज में आलस्य और प्रमाद तब आता है जब ब्रह्मचर्य मानो उसका उग्रवाद धारण कर लेता है। इसीलिए वेदाम भू:व्रत्म विद्यालया सुता:'' एक ही प्रकार के विद्यालयों में ब्रह्मचारी गमन करते हैं, छात्राएं गमन करती हैं तो यह विज्ञान का दुरुपयोग है। जब विज्ञान का दुरुपयोग दोनों के समीप आता है तो उनका ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। और ब्रह्मचर्य के दूषित होने पर मानवीयता, कर्तव्यवाद समाप्त हो जाता है और कर्तव्यवाद के समाप्त होने पर मानव की अधिकार की पुकार बलवती हो जाती है और कर्तव्य वह कर नहीं पा रहा है और उस समय उसकी अधिकार की पुकार होने लगती है। तो राजा उस प्रकार के उस अधिकार को जो अधिकार ही चाह रहा है, कर्तव्यवाद कर नहीं पा रहा है और वह केवल अधिकार ही अधिकार चाहता है, और राजा उसे देता रहता है और वह उनकी पूर्ति नहीं हो सकती। क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक राजा तो कहां, कोई पुरुष ऐसा नहीं हुआ जो उनकी पुकार को स्वीकार करता रहे, देता रहे और वे कर्तव्य नहीं करें और वे अधिकार पे अधिकार की पुकार करें, तो एक समय वह आएगा कि रक्त भरी क्रान्ति आ जाएगी।

तो विचार यह आता है कि रक्त भरी क्रान्ति किस काल में आती हैं, जब राजा, शासक उस 'अमृता' कर्तव्यवादी समाज में नहीं होते और अधिकार की

पुकार करते रहते हैं। अधिकार देते रहो देते रहो तो एक समय वह आएगा कि अधिकार क्या मानो सीमा बद्ध हो जाएगा और रक्त भरी क्रान्तियां उस काल में उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिए मैं यह कहता रहता हूं कि हे भोले राजा, हे राष्ट्र, यदि तू अपने राष्ट्र को उन्नत करना चाहता है तो समाज को और विज्ञान, दोनों को जानने के लिए तत्पर हो। यह जो विज्ञान का दुरुपयोग है जहां मेरे पुत्रियों का नग्न नृत्य हो रहा हो, मानव मानव को नष्ट करने जा रहा हो, उस विज्ञान के माध्यम से तो वह विज्ञान ही नहीं है। वैज्ञानिकों को चाहिए कि अरे जहां तुम मानव को नष्ट होने की परिक्रिया कर रहे हो अथवा उसको अपने में धारण कर रहे हो अर्थात यन्त्रों का निर्माण हो रहा है वहां तुम मानव को जीवन देने की भी तुम्हें क्रिया सत्ता होनी चाहिए।

देखो, समाज जब यह विचारेगा कि इस पृथ्वी मण्डल पर शान्ति कैसे स्थापित हो तो समाज को यह जानना होगा कि संसार में ईश्वर के नाम पर जितनी रूढ़ियां बनती रहेंगी उतने राष्ट्र अन्धकार में चले जाएंगे। ईश्वरवाद के ऊपर रूढ़ि नहीं होनी चाहिए। ईश्वरवाद के ऊपर नाना प्रकार के सम्प्रदाय नहीं होने चाहिए। सम्प्रदाय जब विशेष हो जाते हैं तो उन सम्प्रदायों में स्वार्थवाद बन करके वे रक्त भरी क्रान्ति के उस मूल में विद्यमान हो जाते हैं। मैं ने अपने पूज्यपाद गुरूदेव से कहा था कि इस संसार में कहीं मोहम्मद के मानने वाले हैं, कहीं ईसा के मानने वाले हैं और मैं यह उच्चारण कर रहा था कि यह जो भारत भूमि है, इसकी भी जिस स्थली पर हमारी आकाशवाणी जा रही है वहां भी देखो तीन सौ के लगभग भगवानों की पूजा की जाती है। मैं यह कहता रहता हूं कि यह पूजा नहीं होनी चाहिए। यह पूजा न हो करके कर्तव्य का पालन हो और विज्ञान का सदुपयोग हो तो यह कर्तव्यवाद ही इस समाज और राष्ट्र को उन्नत बना सकता है। जैसे मैंने इस से पूर्व काल में कहा महात्मा नानक अपने में बड़े अद्वितय तपश्चर कहलाते थे परन्तु उनके मानने वालों में कितनी रक्त भरी क्रान्तियां हैं, कितने विचार हैं। क्योंकि ईश्वरवाद को उन्हों ने राष्ट्र तक का चिन्ह बना लिया और जब धर्म राष्ट्र तक और रूढ़ि बन जाती है तो वह न तो धर्म रहता है और न रूढ़ि रहती है, वह रक्त भरी क्रान्ति का एक समूह बन जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने

पूज्यपाद गुरूदेव से आधुनिक काल की चर्चा करते हुए कहा था कि यह जो वर्तमान का काल है, यहां सब के मूल में यह कि विज्ञान का दुरुपयोग है। आज राजा को चाहिए परन्तु राजा तो यह चाहता ही नहीं कि मेरे राष्ट्र में शान्ति हो जाए। यदि राजा यह चाहने लगे कि शान्ति हो जाए तो उनकी जो पद उन्नति है वह कैसे हो सकेगी भगवन !

तो मैं यही नहीं जान पा रहा हूं कि यह सब संसार इस प्रकार का बन रहा है कि "सरम द्रव्ये कृतम देवाः भरम देवः कृतम" जब हम यह स्वीकार करते हैं कि सब प्रभु के धर्म में विद्यमान हैं और हमें, प्रत्येक मानव को कर्तव्य का पालन करना है तो यह समाज देखो उन्नत हो सकेगा। इसलिए सब से प्रथम उन्नति का एक ही मूलक है यह पूज्यपाद गुरूदेव भी वर्णन कर रहे थे कि ब्रह्मवेत्ता राजा हो और ब्रह्मवेता विवेकी उनका पुरोहित हो और कर्तव्य का पालन करने वाला समाज हो और विज्ञान का सदुपयोग होना चाहिए। तो यह विचारना प्रत्येक मानव को होगा कि उस समय यह राष्ट्र और समाज उन्नती को प्राप्त हो सकता है अन्यथा यह रूढ़िवाद नष्ट होना चाहिए। यह मोहम्मद के मानने वाला है परन्तु उसमें अज्ञान है तो उसको नष्ट करे। मानो यदि उसी को मानने वाला है उसमें यदि अज्ञान है तो उस अज्ञान को राजा का कर्तव्य है विचारे।

परन्तु यहां एक दूसरे की कुरीतियों को उच्चारण करना ही मानव के लिए अभिशाप बन गया है क्योंकि उनकी सबकी नीति (मान्यता) चली जाती है। इसलिए वह उच्चारण नहीं कर रहे हैं। जहां कुरीतियां है उन कुरीतियों को प्रत्येक राष्ट्र को विचारना है और प्रत्येक पृथ्वी मण्डल पर (राज्य में) शान्ति की स्थापना हो सकेगी क्योंकि प्रदूषण आ रहा है, प्रदूषण बलवती हो रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने यह वर्णन करते हुए कहा मैं भी इसको उच्चारण करता रहता हूं कि प्रदूषण इतना आ जाएगा मानो अब से आगे वाला जो समाज है, उसको वह श्वास लेते ही देखो मृतक बन सकता है। मैं यह उच्चारण करने के लिए सदैव तत्पर रहता हूं कि राजा अपने अभिमान में परिणत हो रहा है। जहां राजा बन करके नम्रता आती है, जहां कर्तव्यवाद

आता है, यह न रह करके अभिमान की मात्रा बलवती होती चली जा रही है।

इस अभिमान के कारण से यह है कि विद्याता की मृत्यु हो जाए, पुत्र की मृत्यु हो जाए, माता की मृत्यु हो जाए परन्तु उसका अभिमान ज्यों का त्यों बना रहे। और जब यह समय परिवर्तित हो रहा है और मेरा जो सम्प्रदाय है वह बना रहे, मैं सम्प्रदायी हूं। मेरा सम्प्रदाय बना रहे, और भी उस धर्म मत की मान्यता बन गई। मैं यह कह रहा हूं कि यह जो ईश्वरवाद है इसके ऊपर जो रूढ़ियां हैं, वे जब तक नष्ट नहीं होंगी तब तक यह समाज शान्ति की स्थापना में परिणत नहीं होगा। क्योंकि जब से रूढ़िवाद बने हैं या देखो ईश्वर के नामों पर नाना प्रकार की रूढ़ियां बनी हैं, ईश्वरवाद को दुर्गन्ध (गुडम्बावाद) में परिणत कर दिया है, उतना अशान्ति का मूल बनता गया है, अशान्ति की प्रतिभा बन गई है। मानव मानव को नष्ट कर रहा है और वह क्यों कर रहा है ? क्योंकि उसकी ईश्वर के वाद पर रूढ़ि है। उसी रूढ़ि को वह राष्ट्र में चाहता है। उसी रूढ़ि का वह आधिपत्य चाह करके समाज को रक्त भरी क्रान्ति में परिणत करना चाहता है।

तो विचार आता रहता है मैं विशेष चर्चा न देता हुआ विचार यह कि मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को अवगत करा रहा हूं कि मेरा तो सदैव यही बल रहता है कि राष्ट्र को यदि उन्नत बनाना है, समाज में शान्ति को लाना है, ज्ञान और विज्ञान को महान बनाना है तो राजा को चाहिए कि ब्रह्मज्ञानी बन करके वेदोक्त ध्वनि करने वाला राजा समाज को सर्वे भवन्तु सुखी न: का देखो पापध्नता आसन करा करके इस समाज् को उन्नत बना सकता है। परन्तु आज मैं विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। अपने पूज्यपाद गुरूदेव को मैं यह उद्गीत गाने के लिए आया हूं, यही विचार देने के लिए आया हूं कि यदि समाज को उन्नत बनाना है तो रूढ़िवाद को राष्ट्रीय स्तर पर समाप्त करना होगा। भगवान मनु ने यही कहा है कि (धर्म) एकाकी वचन रहना चाहिए। नाना धर्म जब समाज कहने लगता है तो यह कितना बड़ा अज्ञान है।

इतना बड़ा अज्ञान है यह कि एक राजा कहता है कि हम नाना धर्मों को स्वीकार करते हैं। अरे भोले राजा, कहीं तू ने अध्ययन किया या नहीं किया ?

धर्म तो एक ही वचन है। धर्म को एक वचन से उच्चारण करें कि धर्म मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता है और वह इन्द्रियों का धर्म प्रत्येक रूढ़ि के साथ है। यह विचारता नहीं है। जब विचारने लगेगा तो धर्म नाना न बन करके एकाकी धर्म बन जाएगा। यह राष्ट्र का कर्तव्य है कि यह प्रत्येक मानव अपने कर्तव्य का पालन करता रहे। तो आज का विचार विनिमय क्या ? मैं विशेष चर्चा देने नहीं आया हूं। पूज्यपाद गुरूदेव की केवल यही आज्ञा थी 'देखो अमृत्म ब्रह्मा'' मानव को अमृतमयी बनना चाहिए। जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी जा रही है यहां मैं उस काल को भी दृष्टिपात करता था। आज मैं यागों का चयन दृष्टिपात कर रहा हूं। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है। देखो, उस काल को भी यहां मैं दृष्टिपात करता रहा जहां नाना प्रकार की रूढ़ियों ने इस भूमि को पामार किया और "वहेत कृत्म देवत्मवाम ममरे व्रत्म'' मैं यह कहता रहता हूं कि जहां आज वेदज्ञ ध्वनि हो रही है, मेरा अन्तर्हृदय बड़ा प्रसन्न रहता है। मुझे पुन: से यह उच्चारण करना है कि राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। नाना प्रकार के यागों का चयन होना चाहिए। जैसे मेरे पूज्यपाद गुरूदेव उच्चारण कर रहे थे। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पा रहा हूं।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! अभी अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार व्यक्त किए। उनके विचारों में कठोरता तो प्राय: है परन्तु कठोरता के साथ में वाक्य बड़े विचित्र हैं, वाक्यों में कोई न कोई रहस्य है। उन्होंने अभी अभी उच्चारण किया कि मानव को कर्तव्यवादी बनना चाहिए और विज्ञान का सदुपयोग और विज्ञान अपने में महान बना रहे क्योंकि विज्ञान परम्परा से इस सृष्टि के प्रारम्भ से ही यह मानवीय मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है और इसी आधार पर मानवीय विज्ञान रहा है। विज्ञान की चर्चाएं तो प्राय: हम करते रहते हैं। उस शिकामकेतु उद्दालक का शब्द अन्तरिक्ष में, द्यौ में गमन करता रहा है कि जिससे वह मन्त्रों में अपने पूर्वजों के दर्शन भी करते रहे परन्तु हमारा आज का विचार यागों के ऊपर था।

हमारा वृष्टि याग जब राजा और प्रजा दोनों प्रसन्न होते हैं और राजा मध्यस्थ बन करके तपस्वियों को वनों से लाया जाए और वे जब वेद मन्त्रों का

उदगीत गाते हैं तो वह राष्ट्र महान बन जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है जब राजा दशरथ के यहां अयोध्या में एक याग, पुत्रेष्टि याग हुआ था तो उस समय भयंकर बनों से ऋषियों को लाया गया। और भयंकर वनों से कजली वनों से लगभग एक सौ चौषठ पैसठ वर्ष के जो अखण्ड ब्रह्मचारी (श्रृंगी ऋषि) थे उनके द्वारा पुत्रेष्टि याग कराया गया। उन्होंने चरू बनाया तो उस चरू का विज्ञान बड़ा अनुपम है। इसी प्रकार वृष्टि यागों में भी तपस्वियों की आवश्यकता होती है। और तपस्वी उसे कहते हैं जो प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को जानने वाला हो, प्रत्येक इन्द्रियों के विषय के ऊपर उनका ज्ञान और विज्ञान हो, तो वे तपस्वी कहलाते हैं।

तो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल विचार यह कि हमारा जो मानवीयत्व रहा है, वह बड़ा विचित्र रहा है। और मानवीय धाराओं में सदैव जैसा मेरे पुत्र ने अभी अभी राष्ट्रवाद का वर्णन किया और मैं अभी अभी रावण की चर्चा कर रहा था देखा यहां हिरण्याकश्प के समय में भी, राजा हिरण्याकश्प के पुत्र महात्मा प्रहलाद हुए हैं। और उनके जो पिता थे वह रूढ़िवादी थे, वहां ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ियां बन गई थीं। उसको महात्मा प्रहलाद ने 'महत्व भूं व्रते' उन्होंने समूह बनाया। जिसको हम नरसिंह समूह कहते हैं। और नरसिंह समूह ने ही उस के पिता को और उस रूढ़िवाद को नष्ट किया और वहां भूमि पर प्रकाश को लाने का प्रयास किया। यह वाक्य बेटा मैंने तुम्हें पुरातन काल में वर्णन किया।

अब मैं रूढ़ियों का वर्णन न करता हुआ केवल यह कि आज का हमारा जो वाक्य है वह यह कि वृष्टि याग करो तो उसका इस प्रकार से चरू और मन्त्रों का उद्गीत गाया जाता है। परन्तु जितने भी याग होते हैं सब अहिंसक कहलाते हैं, उनमें हिंसा नहीं होती। वह जो महाभारत काल के पश्चांत वाम मार्ग ने यागों में हिंसा का व्यधान किया है। तो यह याग हिंसा में परिणत नहीं होते यह तो मेरे पुत्र महानन्द जी ने कई काल में प्रकट कराया। परन्तु देखो याग अहिंसक होते हैं, वह हिंसक नहीं, अहिंसक कहलाते हैं। जहां आत्मा परमात्मा का मिलन होता है उसका नाम वाह्य याग और आन्तरिक याग जिसका हृदय से समन्वय रहता है। इस प्रकार के यागों का जो चयन है बड़ा

विचित्र है। वेद मन्त्र कहता है "शम्भवमदगानं शम्भवम देवत्वम हृदय कृत्म देवा:'' हे मानव, याग मानव का हृदय है। तो इसलिए प्रत्येक मानव को कर्म करते रहना चाहिए। मेरी प्यारी माताओं को ज्ञान और विज्ञान में रत होकर के ऊंची सन्तानों का जन्म देना याग है। मानवीयत्व में भी रत रहना याग है। तो आज का विचार अब सम्पन्न होने जा रहा है, कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। अब वेद मन्त्रों का पठन पाठन होगा। वेद पाठ।।

ॐ

संसार का स्वरूप

स्थान : लाक्षागृह, वरनावा, मेरठ
दिनांक ५ २४.२.१९९१

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारें यहां परम्परा से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्रं वेद वाणी में उस महामना यजोमयी स्वरूप परमपिता परमात्मा की महति का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यजोमयी स्वरूप हैं। चाहे वह याग भौतिक रूप में हो, चाहे वह आध्यात्मिक रूप मे हो, चाहे वह पिण्ड के रूप में हो, चाहे वह ब्रह्माण्ड के रूप में क्यों न हो। परन्तु यह संसार, यह ब्रह्माण्ड मानो एक यजशाला के रूप में दृष्टिपात आता रहता है। जिसके ऊपर मानव परम्परा से ही अन्वेषण करता रहा है और अनुसन्धान करता रहा है। क्योंकि अन्वेषणं करना ही मानव की प्रतिभा है।

तो मेरे पुत्रो ! आज का हमारा वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महंति (महिमा) का वर्णन कर रहा था। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणनीय हैं और वह यजोमयी स्वरूप हैं चाहे मानव परमाणु याग़ कर रहा है, अणु में भी अपने में याज्ञिक बना हुआ है। प्रत्येक रूप कै तथ्य में अपने में याज्ञिक बना हुआ है, जिसके ऊपर मानव परम्परा से ही कहीं विज्ञान के द्वारा, कहीं समाधि के द्वारा, कहीं अध्ययन के द्वारा उसकी प्रतिभा को जानता रहा है। और उस में विचार विनिमय करता रहा है। इसीलिए हमारा वेद का मन्त्र अद्वितीय कहलाता है। और नाना प्रकार के यागों के द्वारा अपने मानवीय जीवन को एक आदर्श बनाने का प्रयास करता रहा। मुझे बेटा बहुत सा काल स्मरण आता रहता है। मैं उस काल के जब गर्भ में प्रवेश करता हूं जिस काल में मानव अपने में मानवीयता का ह्रास और मानवीयता की वेदी पर सदैव निहित रहता है।

तो आज का हमारा वेद मन्त्र याग के ऊपर हमें प्रेरित कर रहा है और प्रेरणा दे रहा है कि प्रत्येक मानव को याज्ञिक बनना चाहिए और याग में अपने को परिणत करते हुए मानवीय तथ्यों में सदैव रत्त रहना चाहिए। तो आज का हमारा विचार क्या कि हम देव की महिमा का गुणगान गाते हुए और नाना प्रकार के यागों का चयन करते रहें। क्योंकि हमारे ऋषि मुनियों ने इतना अनुसन्धान किया कि प्रत्येक याग का कर्मकाण्ड अथवा उसकी भावनाओं और विज्ञानमयी स्वरूप का उसमें दर्शन होता रहा है। क्योंकि मानव सदैव अपने में दर्शन करने के लिए तत्पर रहता है और विचारता है कि ''मानवर्णम ब्रह्मा दर्शनम ब्रह्वी व्रत्म'' कि यह जो मानवीय दर्शन है, यह प्रायः उस महानता में रत्त हो जाता है, जिस महानता को प्राणी अपने में जानना चाहता है, अपने में रत करना चाहता है।

यह याग कहीं वृष्टि याग में उद्बुद्ध होता है, कहीं यह पुत्रेष्टि यागों के स्वरूप में रमण करता रहा है, कहीं और भी नाना प्रकार के यागों का चयन करता हुआ मानव अपने में मानवीयता के लिए अपनी घोषणा करता रहा है और घोषित होता रहा है। तो बेटा आज का हमारा वेद मन्त्र यह क्या कह रहा है ? हे मानव, तू विज्ञान में रत हो जा और विज्ञान को लेकर के तू याग में रत हो जा या याग में रत हो करके तू विज्ञान के क्षेत्र में चला जा। इस प्रकार का जो अबृत होता रहता है अथवा निर्माण की प्रतिभा में स्थिरता रहती है, वही एक मानवीय तथ्य माना गया है जिसके ऊपर मानव परम्परा से अन्वेषण अनुसन्धान में रत रहा है। आज का हमारा वेद मन्त्र यह कहता है कि महापुरुषों ने अपने में अपनेपन को जाना और अपने में ही वे यागमयी स्वरूप बनते रहे हैं। क्योंकि जितने भी सूक्रियाकलाप मानवीय तथ्य में रमण करने वाला याग कहलाता है। वह अपने में महान कहलाता है।

तो बेटा, आज मैं विशेष चर्चा तो नहीं करूंगा क्योंकि आज मेरे प्यारे महानन्द जी भी कुछ अपना विचार व्यक्त करेंगे। परन्तु आज का हमारा तो अभिप्राय केवल इतना ही है कि मानव अपने में मानवीयता का दर्शन करता रहे। क्योंकि परमपिता परमात्मा का जितना भी प्रकृति मण्डल है चाहे वह लोक लोकान्तरों के रूप में हो, चाहे वह परमाणुवाद के रूप में हो, यह ब्रह्माण्ड

अपने में याज्ञिक बना हुआ है और याग करता रहा है, याग में प्रतिष्ठित रहा है। तो आज का हमारा विचार कि वेद मन्त्र कहता है कि हे मानव, तू पवामान बन, वेद का मन्त्र कहता है "पौ वर्णम ब्रह्मा व्रत्म पव मानस्यचते प्रवहे लोकाम'' कि हे मानव, तू पवमान बन करके अपनी धाराओं में सदैव रत होता चल। तो जब प्रत्येक मानव श्रेष्ठतम क्रियाकलापों में तत्पर हो जाता है तो बेटा यह जगत एक महानता की वेदी पर रत हो जाता है।

तो मैं विशेष विवेचना न देता हुआ केवल यह कि हम अपने में अपनेपन को जाने और याज्ञिक बन करके, क्योंकि एकाकी हमारा प्राण है, अपान है, प्राण और अपान दोनों का मिलन हो रहा है तो याग हो रहा है और जब यह व्यान और समान मिलते हैं वह प्राण से समन्वय करते हैं तो वह भी एक याग बना हुआ है और वह जो उदान नाम का प्राण है वह यज्ञशाला के रूप में साकल्य बन करके उन्हें हूत कर रहा है। तो विचार आता है मानवीय तथ्य और ब्रह्माण्ड दोनों का एकाकीकरण हो जाए तो हमारा जीवन् सार्थकता को प्राप्त हो जाता है। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने विचार व्यक्त करेंगे क्योंकि इनकी बड़ी इच्छा पिपासा बनी रहती हैं

ऋषि महानन्द जी का प्रवचन

"ओ३म सर्वानि माम भद्रम मना: वाचस्य सन्जना: आपा: रथम दधि ब्रह्म:''

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल, भद्र समाज अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मानवता की चर्चा कर रहे थे और परमपिता परमात्मा के याग का मानवीय याग से समन्वय कर रहे थे। वास्तव में देखो यह संसार क्या है ? विकासवाद और शून्य बिन्दु है। बिन्दु से विकास है और विकास ही बिन्दु में रत हो जाता है। पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे कई काल में यह वर्णन कराया कि जैसे बालय का जन्म होता है उसकी जो प्रारम्भिकता है वह भी बिन्दु से है और उसका जो अन्तिम चरण है वृद्ध अवस्था का और वृद्ध होकर के भी सर्वत्र संसार की प्रत्येक भावनाओं से मानव तृप्त हो जाता है और वह परमपिता परमात्मा की इकाई में सदैव रमण कर जाता है। तो विचार आता है कि यह

संसार क्या है ? यह संसार शून्य बिन्दु है। यह संसार शून्य बिन्दु से उत्पन्न है और विकासवाद मध्य है और अन्त में पुन: शून्य बिन्दु में ही प्रवेश हो जाता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मुझे इस प्रकार की वार्ताएं प्रकट कराते रहते हैं।

आज का हमारा वेद मन्त्र और पूज्यपाद गुरूदेव का अन्तिम चरण का जो उपदेश है वह केवल मानवीयता कहलाती है। मैं पूज्यपाद गुरूदेव को अपने विचारों का परिचय देने आया हूं और समाज को भी अपना परिचय देना चाहता हूं। और वह परिचय यह है कि यह समाज को 'ब्रह्मणो' मैं कुछ वार्ताओं में ले जाना चाहता हूं। आज हमारा बड़ा सौभाग्य है और हम बड़े सौभाग्यशाली हैं और जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी हो रही है वहां "चतुष वेदाम भू वरूणम" वेद परायण याग सम्पन्न हुआ है और उस सम्पन्न गर्भ में जो भी मेरा यजमान है वह समृद्ध हो। क्योंकि मेरी अन्तर्भावना यजमान के साथ रहती है। और मैं यह कहता रहता हूं कि यजमान का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और उनकी वह प्रवृतियां विचित्र बनी रहें और 'यागाम भू वरूणाम' प्रत्येक रूप में जो मानव याग करना चाहता है उसका याग द्यौ को प्राप्त हो जाए। ऐसी मेरी भावना रहती हैं मेरा अन्तरात्मा सदैव यजमान के साथ रहता है। हे यजमान, तेरे जीवन की प्रतिभा बनी रहे, तू अपने में तारतमयवादी बना रहे। इस प्रकार की आशीष देते हुए 'अमृताम ब्रह्मणे व्रहा:''।

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मुझ से कुछ उद्गीत गवाते रहते हैं और मैं उसमें रत रहता हूं, वे गान गाना मानव का कर्तव्य है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा की सृष्टि का जो गान गाया जाता है वही एक मानवीयत्व में रत रहता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अभी अभी गागर में सागर की कल्पना की है और कई समय हो गया है उन्हें नाना दर्शनों की चर्चा करते हुए। परन्तु यह जो स्थली है यह दार्शनिक रही है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव का कोई दोष अन्वरत रहे हैं, यह सदैव विचारों की स्थली रही है और देखो मुझे वह काल स्मरण आता है जब मैं अपने में वृत होता हूं। यहां वह स्थलि है जहां भीम और घटोत्कच दोनों की विज्ञानशाला रही है और वे विज्ञानशालाएं जिन में नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण भी होता रहा है और उन यन्त्रों में कई समुद्रों से मिलन करते रहे हैं और लोक लोकान्तरों में जाने वाले उड़ान करने वाले

यन्त्रों का भी निर्माण होता रहा है। इसी प्रकार देखो यहां वह स्थलि है जहां कौरव और महाराजा दुर्योधन ने पाण्डव पुत्रों और माता कुन्ती को जिन्हें हस्तिनापुर से इस स्थली में पर्व के लिए लाया गया तो एक ''षडयन्त्र अन्दरतम व्रहे'' एक पामर स्थलि रचाई और वह रचना क्या थी कि उन्हें (पाण्डवों को) नष्ट करने की भावना बनी, जिससे ये नष्ट हो जाएं और वह राष्ट्रीय पद्धति हमारी बनी रहे। यह भावना जब इनके (कौरवों के) हृदय में रही तो यह पाण्डव पुत्र इस स्थलि पर वास करते रहे और वास करके महाराजा भीम ने अपने यन्त्रों द्वारा अग्नि का विधान किया और वह जो सुरंग बनी थी उस में से दूरी हो गए। वह जो अन्तवृतियों में रत रहने वाला विचार आता रहता है, मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को क्या वर्णन करा सकता हूं क्योंकि ये तो स्वतः ही जानते हैं।

यह वो स्थली है जहां पाण्डव अपनी आभा को लेकर के आए, समय समय पर यहां तो वह नष्ट हो गया अग्नि के मुखारविन्द में। उसके पश्चात 'अमृतम' उसके पूर्व काल में भी नष्ट होने के पूर्व काल में यहां द्रोणाचार्य का विश्वविद्यालय था। इस विद्यालय में मुझे तो ऐसा स्मरण है कि लगभग पांच हजार विद्यार्थी अध्ययन करते थे और वेद अध्ययन शाला रही है और वह भी 'अमृताम भू' अग्नि के मुखारविन्दु में चली गई। और कुछ नदी के तटों ने उसको परास्त कर दिया। इसी प्रकार 'अमृताम' यहां बड़े क्रिया कलाप होते रहे हैं और किसी समय हमारे द्वारा भी यागों की स्थली रही। देखो याग की कोषियां (याज्ञिक) याग करते थे। महाराजा द्रोणाचार्य मानो पाण्डित्य की आभा को लेकर के ब्रह्मचारियों की पंक्ति लगा करके वह याग करते थे और वह जहां देवयाग करते थे वहां धनुर्याग करते थे। वहां देव याग में परिणत होकर के देवताओं की पूजा का विधान भी था। अग्निहोत्र करना और 'देवयम व्रताम' व्रती रहना यह सदैव उनका क्रिया कलाप रहा और यहां यागों में यन्त्रों का निर्माण किया जाता। वे निर्माण शालाएं रहीं हैं। तो विचारना यह है कि मध्य काल में जब बुरा कुछ काल आया और काल आने पर यहां महाराजा परीक्षित का न्यायालय भी रहा है किसी काल में। यहां न्याय भी होता रहा है। परीक्षित न्यायाधीश बन करके न्याय करते रहे हैं।

इसी प्रकार समय आता रहा, वह भी समय चला गया। वाम मार्ग काल आया। वाम मार्ग काल में अशुद्धियां आनी प्रारम्भ हुईं। धर्म के रहस्यों को न जान करके नाना कृतियों में रत होते रहे। तो विचार विनिमय यह हुआ कि नाना प्रकार के यन्त्रों द्वारा पाण्डव यहां से चले गए, उनके प्राणों की रक्षा हो गई और देखो यहां परीक्षित का न्यायालय रहा। न्यायालय में स्वतः वे आते रहते, न्याय भी करते रहे हैं। जब इस प्रकार का काल चला गया तो वाम मार्ग आया। वाम मार्ग भी चला गया। अन्तिम परिणम यह हुआ कि यहां यवन और मोहम्मद के मानने वाले जब आए तो इसको भ्रष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। यह भ्रष्ट होता रहा। देखो यहां शिवालय था। शिवालय का एक महात्मा ने सुरा वृतियों में महात्मा बुद्ध के काल में उसका निर्माण हुआ। शिवालय का निर्माण हुआ, उसको भी परास्त किया गया। परास्त (ध्वस्त) करने के पश्चात यहां क्या हुआ मैं इसके ऊपर कोई अपनी टिप्पणी नहीं दूंगा।

केवल विचार विनिमय यह है कि एक स्थली वडी भव्य और यह महापुरुषों की स्थलि रही है। यहां महात्मा जमदग्नि मुनि महाराज भी इस स्थली पर रहे हैं। क्योंकि जमदग्नि का आश्रम यहां इस स्थली से कुछ ही दूरी पर था और वे आश्रम में भी रहते, यहां भी आते रहे हैं। तपस्या स्थली यह बनी रही है। उसके पश्चात यहां जैमनी जी ने भी कुछ दर्शनों को लेखनी बद्ध किया है। क्योंकि यही नदी का तट था और यह स्थलि बड़ी भव्य थी मानो तपस्यों की स्थलि रही और वेद मन्त्रों का उद्घोष होता रहता था। पण्डित समय समय पर आकर के अपने में अपनेपन को चिन्तन में लाते रहे हैं और यह 'द्रव्य अप्रत्म' वही भव्य स्थली है, उस स्थली का परिणाम क्या ? मानम ब्रहवे कृत्य देवाः।

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कई कालों में वर्णन कराया परन्तु जब वे (यवन) आए तो भ्रष्टता आ गई और भ्रष्टता आने से शिवालय के पिण्डाकार जो ब्रह्माण्ड का पिण्ड बना करके देवत्व की पूजा करते रहे हैं, उसको भी दूर किया गया और उसके पश्चात यहां और भी नाना प्रकार की निर्मम हत्याएं होती रही हैं। देखो मृत्यु दण्ड भी दिए गए हैं। तो आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विचार देना नहीं चाहता। यह तो मानव का ह्रासपन होना है। विचार केवल

यह कि 'अमृत्म बह्मे' यहां नाना कन्याओं का भी ह्रास हुआ है। यहां एक कूप है उस कूप में मृतक अप्रतियों में हनन करते हुए नष्ट किया गया। तो आज मैं इस क्षेत्र में न जाता हुआ केवल विचार विनिमय हमारा यह कि मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मैं आपको कुछ परिचय दे रहा हूं। उसके पश्चात देखो पुन: से समय आया मेरे पूज्यपाद गुरूदेव जाने कहां से उत्पन्न हो गए ?

परन्तु इस स्थलि से आगे पुन: से यागों का प्रावधान होने लगा और यहां "यागाम" आदि वेद मन्त्रों का पुन: से उद्गीत गाया जाने लगा। क्योंकि जो भूमि जिस प्रकार की होती है देखो अन्त में उसी प्रकार को लेकर के ही भूमि के परमाणुवाद का जन्म हो जाता है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरूदेव से कई काल में कहा है। आज भी मैं उद्गीत गा रहा हूं कि वेदों की ध्वनियां जब अन्तरिक्ष में, इस वायुमण्डल में ध्वनित होती हैं तो हमारा सौभाग्य जागरूक हो जाता है, उस भूमि का पुन्य उदय हो जाता है। जब महात्मा 'अमृत्म ब्रहे कृत्य देवत्वाम ब्रह्मा:' द्रोणाचार्य के समय में यहां इस प्रकार की स्थलि रही और द्रोणाचार्य अपने ब्रह्मचारियों को वेद ध्वनि का पठन पाठन कराते रहे। जहां वे धनुर्याग में पारायण थे वहां वे वेद मन्त्रों की ध्वनि में भी बड़े पारायण थे।

जब भीष्म जी किसी काल में यहां आते रहते, समय समय पर वे भी वेद मन्त्रों का उदघोष करके यहां तपस्या करते रहे हैं और उनका ब्रह्मचर्य सजातीय बन गया था। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह वर्णन कराने जा रहा हूं कि जो भीष्म की, जो द्रोणाचार्य की, पाण्डव पुत्रों की महान स्थलि रही है तो वह महात्मा 'व्यासम ब्रहे' व्यास मुनि भी यहां तपस्या में परिणत रहे हैं। आज मैं इस विषय में विशेषता में नहीं, केवल यह साहित्य विचार धारा है। साहित्य कहता है, आचार्यजन कहते हैं कि यहां वेद ध्वनि होती। आज भी मैं नवीन साहित्य में प्रवेश करना चाहता हूं कि पूज्यपाद गुरूदेव का वह जन्म जन्मान्तरों का जो संस्कार है वह यागों के माध्यम से प्रकट होने जा रहा है और वह जो प्रकट हुआ यागों के रूप में ही प्रकट हो सकता था। क्योंकि अन्त:करण में उस प्रकार के अंकुर विद्यमान थे।

जन्म जन्मान्तरों के जिनमें याग का एक एक अंकुर (अन्त:करण)

स्थलि पर याग कर रहा है, हृदय में जो एक एक परमाणु याग कर रहा है, वह याग देखो जन्म जन्मान्तरों की आभा में रत हो करके वह पुन: से उपजने लगता है। इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरूदेव के अन्तर्हृदयों में वे उपजने लगा और उपज करके ध्वनियों का प्रसार हो रहा है, ध्वनित होता हुआ अपने में ध्वनित हो रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव की प्रशंसा करने नहीं आया हूं। मैं केवल वास्तविक जो स्वरूप है। समय समय पर वर्णन करता रहता हूं। परन्तु आधुनिक जो काल है यह ऐसा काल है जिस काल में मानव की प्रवृति वाम मार्ग की बन गई है। और वाम मार्ग उसे कहते हैं जो सुरापान करने वाले हैं, मांस का भक्षण करने वाले हैं, जो जलचरों को और गमन करने वाले प्राणियों को अपने शरीरों में जिनको स्थान दिया जा रहा है और वह परमाणु अशुद्ध हो करके बुद्धि को भ्रष्ट करता जा रहा है।

मेरे हृदय में जब यह विचार उपलब्द्ध होते (उमड़ते) हैं, अरे कहीं संसार में याग होने लगे क्योंकि अपने में व्रत है अर्थात मानव का अभाव है। कहीं नृतिका आ जाए तो लाखों की संख्या में प्राणियों का आगमन होने लगता है। जब यहां राष्ट्रवेता भ्रष्ट बन जाते हैं और राष्ट्रवेताओं में भ्रष्टता आ जाए तो भ्रष्ट राष्ट्रवेताओं के साथ में लाखों प्राणियों का व्यवसाय हो जाता है। तो विचार आता रहता है। मैं इसमें कठोरता में नहीं जाऊंगा। पूज्यपाद तो मुझे यह कहते ही हैं कि कठोर उच्चारण करते हो। परन्तु मैं कठोर नहीं कहता हूं। मेरा जो वास्तविक उद्गीत गाने का अभिप्राय है वह वास्तविकता में रमण करता रहता है। मैं विचारता हूं। मैं इस संसार को दृष्टिपात करता रहता हूं कि यह संसार क्या कर रहा है ? नाना नृतिकाओं में रमण कर रहा है और वाम मार्गी यहां का राजा है। वाम मार्गी ही समाज बनता जा रहा है।

उसमें अंकुर रूपों से तो महापुरुषों की उत्पत्तियां होती ही रहती हैं और देखो यहां वृतियों में रत रहने वाला समाज तो रहता ही है। परन्तु यहां इसके मूल में कौन है ? इसके मूल में जो स्वार्थी प्राणी होते हैं राजा के राष्ट्र में, चाहे वह राजा के रूप में हो, चाहे वे प्रजा के रूप में हों, चाहे वे पुरोहितों के रूप में हों, चाहे वे पण्डित के रूप में हों, वे राष्ट्र को अग्नि के मुखारविन्द में परिणत कर (ढंडेल) देते हैं और समाज में जब मैं राजाओं की स्थलि पर जाता

हूं तो एक दूसरा राष्ट्र एक दूसरे राष्ट्र को नष्ट करना चाहता है। उसके मूल में क्या है कि ईश्वरवाद के ऊपर जो रूढ़ियां बन गई हैं और वे रूढ़ियां ही विनाश के मूल में मानव को ले जा रही हैं। देखो यहां यह मानते हुए कि मोहम्मद के मानने वाले हैं इन्हें नष्ट किया जाए, यह राम के मानने वाले हैं इन्हें नष्ट कियो जाए, यह ईशु के मानने वाले हैं इन्हें नष्ट किया जाए, अरे भोले प्राणियों तुम एक दूसरे को नष्ट क्यों कर रहे हो ?

अरे तुम एक स्थलि पर विद्यमान होकर के वैदिकता में रत होते चले जाओ। जिससे तुम्हारा जीवन एक दूसरे की मृत्यु प्रणाली से समाप्त हो जाए। वह अश्वमेघ याग करने लगो। जब प्रजा और राजा निर-अभिमानी बन करके राजा तपश्चर्या में परिणत होकर के शुद्ध आहार करने लगता है और अपनी शुद्ध आहार की प्रणाली को अपनाता है तो यह समाज स्वत: ही पवित्र बनता चला जाएगा, एक दूसरे को नष्ट करने की भावना नहीं होती। जितना मानव का आहार अशुद्ध हो जाता है उतनी ही समाज की अपवित्रता की उत्पति अति विशेष होने लगती है और जब शुद्ध आहार होता है तो माता पिता क्या, पति पत्नी सब शुद्ध होते हैं। महापुरुष भी सब शुद्धिकरण में परिणत हो जाते हैं। तो उसके आहार करने से मानव में वासना उत्पन्न नहीं होती। वह केवल अपने कर्तव्य का पालन करता है। और वासना के क्षेत्र में जाने से समाज में वृद्धि आ जाती है। और समाज की वृद्धि का मूल कारण बनता है कि एक दूसरे में संग्राम होने लगता है।

तो मैं कहा करता हूं कि राजा को चाहिए कि अपने में शुद्ध आहार करने लगे, शुद्ध व्यापार करने लगे और शुद्धिकरण जब प्रत्येक मानव का हो जाएगा तो यह समाज बलवान होगा, यह अज्ञान भी नहीं रहेगा। ज्ञान में परिणत होकर के माताओं के उतनी ही सन्तान उत्पन्न हो सकेगी जितनी उनको आवश्यकता है। और यदि वासना के क्षेत्र में प्रवेश करता हुआ वाम मार्गी बन कर के सुरापान कर रहा है, कही मांस का भक्षण कर रहा है, कहीं नाना प्रकार के अपनी रसना के स्वाद में परिणत हो रहा है, उससे क्या होता है कि रज, वीर्य में वासना की उत्पन्नता कुछ उपज सकती है, अशुद्ध हो जाती है। और अशुद्ध होने से प्रत्येक माता के गर्भ से सन्तान विशेष और वृद्धि होने

लगती है। तो उसका परिणाम यह होता है, मेरे पूज्यपाद गुरूदेव कहते हैं कि अधिक सन्तान होने से समाज में ह्रासता आ करके राष्ट्र में अज्ञान आ जाता है। विज्ञान का दुरुपयोग होने लगता है। देखो आहार अशुद्ध होने को हमारे यहां वाम मार्ग कहा जाता है।

तो मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरूदेव को आधुनिक (वर्तमान) काल की चर्चाएं कीं। मैंने अपने पूज्यपाद गुरूदेव से यह परिचय दिया कि एक समय (ओर) आहार अशुद्ध है, एक समय (ओर) विज्ञान का दुरुपयोग है, एक समय (ओर) सम्प्रदाय की प्रवृति बनी हुई है, मोहम्मद के मानने वाले यह कहते हैं कि सन्तान में विज्ञान का उपयोग न करो क्योंकि हमारा राष्ट्र होना है। और "देखो अमृतम" नानक के मानने वाले कहते हैं कि हमारा राष्ट्र होना है। इन्हें सब को नष्ट किया जाए। तो जब यह प्रवृत्ति समाज में बन जाती है तो वह तरंगें वायुमण्डल में प्रवेश होती हैं। आज वायुमण्डल को कोई वैज्ञानिक यह कहे कि मैं इसके प्रदूषण को समाप्त कर सकता हूं। संसार का कोई प्राणी इसके प्रदूषण को समाप्त नहीं कर सकता। क्योंकि जब तक विचारों में पवित्रता नहीं आएगी, जब तक विचारों में एक दूसरे के नष्ट करने की भावना बनी रहेगी तब तक वायुमण्डल अशुद्ध ही रहेगा और वे समय समय पर वायुमण्डल से एक दूसरे लोक लोकान्तरों से भी यन्त्रों का प्रयोग हो सकता हैं

तो मैं यह विचार कर रहा हूं "सम्भव प्रवहे" मेरे पूज्यपाद गुरूदेव को मैं वर्णन करा रहा हूं कि समय समय पर जब इस प्रकार की प्रतिभा बनती रहती है, इसीलिए मैं यह कहता हूं कि मानव को एक रस रह करके भ्रमण करना चाहिए। परमात्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है वह सब के लिए एक ही तुल्य होता है। उसमें कोई नानक के मानने वाला हो, ईसा के मानने वाला हो, चाहे वह मोहम्मद के मानने वाला हो परन्तु जब इसमें राष्ट्रीयता रहेगी तब तक इन रूढ़ियों में यह रूढ़ि विनाश के मूल पर चलती रहेगी। तो विचार आता रहता है ईश्वरवाद इन्हें नहीं कहा जाता, ईश्वरवाद उन्हें कहते हैं जहां ईश्वर का चिन्तन होता है, ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ी जाती हैं। ज्ञान और विज्ञान का सदुपयोग होता है, जहां एक दूसरा मानव विज्ञान के रहस्यों में

प्रवेश कर जाता है। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को वर्णन कराना चाहता हूं कि विज्ञानवेता जब यह विचारते रहते हैं कि द्रव्य होना चाहिए और विज्ञान के माध्यम से द्रव्य होना चाहिए।

परन्तु विज्ञान के माध्यम से द्रव्य होता ही है, इसमें कोई द्वितीय विचार नहीं है। परन्तु विज्ञान का दुरुपयोग जब होने लगता है उसमें, विकृतियां आने लगती हैं तो वह विज्ञान समाज और राष्ट्र दोनों को भ्रष्ट कर देता है। तो विज्ञान वह कहलाता है जिस विज्ञान में मानव एक एक परमाणु में ब्रह्माण्ड का दर्शन करता है मानो वह ब्रह्माण्ड का दर्शन भी विज्ञान में नहीं आ पाया है। एक एक विज्ञान ऐसा है जो पुरातन काल में जब मैं उस विज्ञान के ऊपर जाता हूं जो पूज्यपाद गुरूदेव प्रकट कराते हैं कि अपने पूर्वजों के चित्र अन्तरिक्ष में रमण करते रहते हैं और वह विज्ञान यन्त्रों में अब तक भी नहीं आ पाया है जो एकाकीरण करने वाला है। यहां शब्द विज्ञान की सूक्ष्मता इतनी है कि वह विज्ञान भी नहीं आ पाया है जिस विज्ञान में यज्ञशाला में तरंगें उत्पन्न हो करके स्वाहा स्वाहा कह करके और वह द्यौ मण्डल में प्रवेश करके वही शब्द मानव को प्राप्त होते हैं। वे कैसे प्राप्त होते हैं इसके ऊपर भी मानव ने अब तक विचार विनिमय नहीं किया है।

जब मैं विज्ञान के क्षेत्र में जाता हूं, वह विज्ञान भी अब तक नहीं आ पाया है जब चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य में यन्त्र निर्माण करके महाराजा शिव जैसे मार्कण्डेय जैसे ऋषि लोक लोकान्तरों के यन्त्रों को दृष्टिपात करते रहे हैं। वह भी विज्ञान अब तक नहीं आ पाया है परन्तु विज्ञान में कितनी सूक्ष्मता रही है। वह भी विज्ञान नहीं आया है कि एक यन्त्र में देखो आज परमाणु शक्ति का प्रयोग होने जा रहा है परन्तु जब वह प्रयोग होगा तो मानव स्वाश लेने से समाप्त हो जाएगा। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महाभारत का काल था और महाभारत में जब परमाणु शक्ति का संग्राम हुआ तो एक यन्त्र ऐसा था जो घटोत्कच के द्वारा जलाशय से बना हुआ, चन्द्रमा की सहायता से परमाणु ले करके यन्त्रों का निर्माण हुआ, जिससे अग्नि अस्त्र वही समाप्त हो जाते। वह जलाशय चन्द्र व्रातीं यन्त्र कहलाया जाता था।

समुद्रो के तटों पर आज का आधुनिक काल का विज्ञान विद्यमान है। एक समुद्र के ऊपर छाया आती है उस छाया के नीचे जो भी यन्त्र आ जाता है वह यन्त्र नष्ट हो जाता है, उसका एक परमाणु भी अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। परन्तु वह घटोत्कच और भीम की विज्ञान शाला में बनाया यन्त्र जिसे महाराजा घटोत्कच ने अन्तरिक्ष में स्थिर कर दिया था, उस यन्त्र की १,८५,५०० वर्षों की आयु है और वह यन्त्र जब तक रहेगा समुद्र की उस स्थली पर तो मानव वहां जा नहीं सकता, यन्त्र उसकी छाया के नीचे समाप्त होते रहेंगे। आधुनिक काल का वैज्ञानिक कहता है यह तो प्रेत आत्मा है या यह मानव को और प्रेत आत्मा पर इसके ऊपर अन्वेषण चल रहा है। परन्तु इसका विचार विनिमय अभी तक नहीं किया गया है। यह विज्ञान भी आधुनिक काल का अधूरेपन में रमण कर रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आधुनिक काल के विज्ञान की चर्चा नहीं कर रहा। केवल देखो यहां का वैज्ञानिक अपने में यह स्वीकार कर रहा है कि हमने बहुत कुछ जाना है। परन्तु जो विज्ञान के यन्त्रो को अब जान लिया है वह यन्त्र को निर्माण करने लगता है।

जब मैं इन विचारों पर जाता हूं। मैं विज्ञान के ऊपर तुम्हें नहीं ले जा रहा हूं। केवल मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को यह परिचय करा रहा हूं कि आधुनिक काल का जो यह जगत है, यह बड़ा विचारणीय है, यह बड़ा अशुद्ध कहलाया जाता है। एक मानव मानव का ह्रास कर रहा है। एक यन्त्र रावण के काल में भगवान राम ने त्यागा था। उस यन्त्र में परमाणु शक्ति थी। मेघनाथ उस परमाणु शक्ति को प्रहार रूप मे लाए तो भगवान राम ने चन्द्रमा की सहायता से और महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में जिस यन्त्र का निर्माण हुआ था वह यन्त्र चन्द्रवास केतु यन्त्र था, इसको त्यागने से मेघनाथ की जितनी परमाणु शक्ति थी वह सब दमन हो गई। तो विचार आता रहता है कि मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को वर्णन कराता रहता हूं कि अब आधुनिक काल में चन्द्रमा पर किसी का अन्वेषण नहीं है। पूज्यपाद गुरूदेव ने कई विचार दिए हैं। एकपदा द्विपदा का भी वर्णन किया है परन्तु आधुनिक काल का विज्ञान चन्द्रमा के ऊपर इकाई में गमन कर रहा है, इकाई में रमण कर रहा है, तो आज मैं विज्ञान की चर्चा नहीं करूंगा। केवल यही है मानव, तू मृत्यु के लिए न चल।

परन्तु तू एक दूसरे मानव को जीवन देने के लिए तत्पर हो।

जब तू एक दूसरे को जीवन देने लगेगा और जीवन में ही स्पष्टीकरण करो। हे राजन, यदि तू अपने राष्ट्र और समाज को उन्नत बनाना चाहता है तो तू ब्रह्मज्ञान और उपनिषदों का अध्ययन कर, वेद का अध्ययन कर, जहां सामान्य ज्ञान और आत्मा का ज्ञान है। आत्मा की प्रतिभा में रत हो करके तू रूढ़िवाद का अपने में निराकरण कर सकेगा। रूढ़िवाद का खण्डन न कीजिए, रूढ़िवाद को विचारने से प्रतीत होगा कि उसका चिन्तन कीजिए और चिन्तन करके यदि उसमें मानवीय दर्शन है तो वह रूढ़ि श्रेष्ठ है। और यदि मानव दर्शन का उसमें अंकुर नहीं प्राप्त होता तो उस रूढ़ि का दमन कर देना चाहिए, उस रूढ़िवाद का दमन हो जाना चाहिए जिसमें मेरी पुत्रियों का श्रृंगार हनण होता हो, अथवा जिसमें कोई अस्तित्व न हो। माता का कोई अस्तित्व जिस रूढ़िवाद में न हो, राजा को चाहिए कि वह उस रूढ़िवाद का दमन करता हुआ और वैदिक बने और ज्ञान के प्रकाश और वेद में अपने राष्ट्र को तपाने वाला बने।

ऐसा मेरा मन्तव्य बना रहता है। परन्तु जहां मानव, मानव का ह्रास करता जा रहा है, उसे आत्म चिन्तन नहीं कर रहा यह किस की सूक्ष्मता है? यह राष्ट्र की सूक्ष्मता है। और राष्ट्र पदों की लोलुपता में अपने जीवन को समाप्त कर रहा है। वह अपने में कार्यरत नहीं है। वह कार्यरत इसी में है कि कौन किस को, हमें गिराता है, किस को ऊर्ध्वा में ले जाना है। हम कैसे ऊर्ध्वा में जाएंगे परन्तु इसी में उसके जीवन की प्रतिभा समाप्त हो रही है। वह भी काल था जब महापुरुष विद्यमान हो करके ऋषि मुनि यह विचारते रहे कि तप करो "तपम तपम ब्रहवे कृत्य" वेद का वाक्य कहता है, पूज्यपाद कहते हैं कि "तपम तपम ब्रहवे तपम" देखो यहां ब्रह्मचारी तपें, माताएं तपें, राजा तपस्वी हों, प्रजाएं तपस्वी हों तो उस कर्तव्यवाद का नाम ही तप कहलाता है, इन्द्रियों के ऊपर संयम करने से उसका नाम तप है। जब इस प्रकार का ज्ञान और विज्ञान हमारे जानने में सदैव तत्पर रहता है, तो मानव की एक दूसरे को नष्ट करने की भावना उसमें नहीं आती।

भावना तब आती है जब मानव की आवश्यकता बलवती हो जाती है और आवश्यकता के लिए मानव को द्रव्य की और वह अप्रतियों में उनके हृदयों की तृप्ति नहीं होती, तो मानव एक दूसरे का ह्रास करता है। द्रव्य के लिए, मान अपमान के लिए वह एक दूसरे का ह्रास करता रहता है। परमात्मा को नहीं जाना जाता। क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरूदेव कहते हैं कि परमात्मा निरभिमानी है इसलिए मानव को निरभिमानी रहना चाहिए, राजा को निरभिमानी रहना चाहिए, तू परमात्मा की सृष्टि से जब चलायमान हो रहा है। अरे जब राजाओं को मार्ग में गमन करते समय जब मृत्यु का भय बना रहता है तो इसको राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। राष्ट्र वह कहा जाता है जहां राजा निर्भय होकर विचरण करता है। ब्रह्मज्ञानी महात्मा की भांति जब वह भ्रमण करता है देखो **जैसे सूक्ष्म शरीर से हम जैसे प्राणी भ्रमण करते हैं।** जब राजा इस प्रकार भ्रमण करता है तो वह राष्ट्र श्रेष्ठ कहलाता है। और वह राजा निरभिमानी बनता है।

मुझे स्मरण है कि भगवान राम जैसे सखा के द्वारा कोई रक्षक नहीं था परन्तु वह स्वतः रात्री काल में जब भ्रमण करते तो वे निर्भय हो करके और वह 'अमृत्म ब्रह्मे' वृत्तियों में रत रह करके जो प्रजाजन हैं वे अन्तगृहों में जो वार्ता प्रकट करते थे उनको श्रवण करते और दिवस काल में उनका न्याय करते रहे। आधुनिक काल में न्याय क्या है ? न्याय के ऊपर मैं टिप्पणी नहीं देना चाहता हूं। यह तो केवल मैं अपवाद में चला गया हूं। विचार विनिमय यही है कि राष्ट्र को ऊंचा बनना है तो उसे (राजा को) किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं होती। रक्षक की आवश्यकता उन्हें होती है, जिनके हृदयों में वाममार्ग की भावना होती है, जिनके हृदयों में एक दूसरे की रक्षा जो नहीं कर पाता, रक्षा कराने का उसे कोई अधिकार नहीं होता है, संसार का, प्रकृति का, यह नियम कहलाता है कि हम रक्षक बने और यदि रक्षक नहीं बन सकते तो हमारी रक्षा कौन कर सकता है ?

मुझे बहुत सा काल संसार का स्मरण है मैं उसमें जाना नहीं चाहता हूं। मेरा विचार विनिमय यही रहता है कि रक्षा परमपिता परमात्मा उसकी तब करता है जबकि मानव, मानव की रक्षा नहीं कर सकता। उसको जो मानवीयत्व है वह उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर रहता है और जब राजाओं

का यह भ्रम भय बना रहता है कि तेरी मृत्यु न हो जाए और तेरी रक्षा होनी चाहिए। अरे भोले प्राणी ! यह तू जान, हे राजा ! राजा बन करके तू इतना ज्ञान अपने में धारण कर कि मृत्यु में तो तुम्हारे पिता महापिता सब चले गए हैं, यह संसार गति कर रहा है अरे यह चलता रहेगा और तुझे भी एक समय जाना है। परन्तु जब तुझे जाना है तो भय किसलिए ?

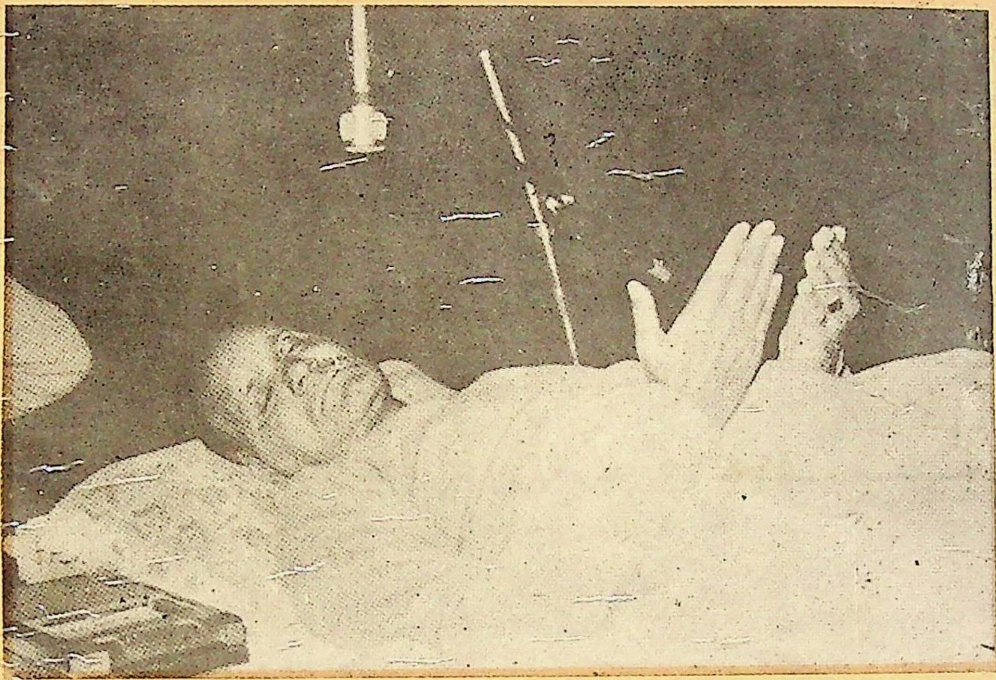
ब्रह्माण्ड रहता है और शून्य बिन्दु से विकास होता है और पुनः शून्य बिन्दु को प्राप्त हो जाता है। तो इसी प्रकार यह मानव का जीवन है। इसके ऊपर विचार विनिमय करना है और यहां कर्तव्यवाद की प्रतिभा में जो मानव रत रहता है उसका जीवन है और जो इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है वह तपस्वी है और जो एक दूसरे प्राणों की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की ही नहीं, देखो दूसरो की रक्षा करो। दूसरों की रक्षा करे तो स्वतः अपनी होती चली जाएगी और जो अपने से ही दूसरों की रक्षा नहीं होगी तो तुम्हारी रक्षा कौन कर सकेगा ? वह परमपिता परमात्मा भी तुम्हारी रक्षा नहीं करेगा। परन्तु हे राजा, जब तू दूसरों की रक्षा करेगा मानो ऐसे नियम बनाएगा और तेरा हृदय निर्भय हो जाएगा तो यह राष्ट्र और समाज पवित्रता की वेदी पर आ जाएंगे तो रूढ़िवाद यहां से स्वतः ही चला जाएगा।

तो अब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा। बहुत समय लिया परन्तु मेरे विचारों का अभिप्राय यह कि यह जो स्थलि है यह बड़ी भव्य रही है। परम्परा से इस पर महान तपस्वी रहे हैं। वे परमाणु वायुमण्डल में अब भी गमन कर रहे हैं। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव का जो संस्कार है वह जागरूक हुआ। परन्तु आज मैं अपने यजमानो को आशीष देता हूं कि इनके जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, उनमें त्याग और तपस्या की प्रतिभा बनी रहे। तो आज का विचार हमारा सम्पन्न होने जा रहा है पूज्यपाद।

मेरे प्यारे ऋषिवर, अभी अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने बड़े भव्य विचार दिए हैं। उनके विचारों में राष्ट्र और समाज के प्रति एक दाह बनी हुई है। बड़ी एक विडम्बना है और वह विडम्बना भी किसी स्वरूप में यथार्थ रूप में रहती है। आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना भव्य विचार दिया और

इनके विचारों में एक भव्यता रहती है और एक दाह है कि राष्ट्र और समाज ऊंचा बने, धर्म ऊंचा बने। यह धर्म और राष्ट्रीयता पर प्रभु कृपा करेंगे तो यह समाज पवित्र बनेगा। आज का विचार समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। वेद पाठ।।

ॐ



प्रवचनाकार

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी का जन्म अक्तूबर 1942 में ग्राम खुर्रमपुर सलीमाबाद (समीप कसवा मुरादनगर) जिला गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) के एक निर्धन परिवार में हुआ था। गरीबी के कारण अपठित होने से ग्राम में बचपन से ही छोटे-मोटे कार्य करते रहे और श्रृंगी ऋषि के मूल स्वर में इनके द्वारा प्रवचन होने के कारण यह ग्रामवासियों के मनोरंजन का साधन बने रहे। प्रवचन अनुपम शैली में प्राचीन वैदिक संस्कृति को दर्शाते हैं और अपनी विशिष्टता, श्रेष्ठता रोचकता आदि आकर्षणों से युक्त सीधे हृदय और आत्मा को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी अलंकारिक गुत्थियाँ जिन्हें वर्तमान में अविश्वसनीय माना जाता है जैसे गणेश के हाथी का सिर, हनुमान का सूर्य को मुख में रखना, कुम्भकरण का छः माह सोना-जागना, रावण के दस शीश, विष्णु के चार भुज आदि-आदि वार्त्ताओं की बुद्धिसंगत तथा हृदयग्राही व्याख्या की गई है। जनता को प्रवचनों से अधिकाधिक लाभ उठाकर जीवन को उत्तम बनाना चाहिए।

वैदिक प्रचार समिति, अमृतसर